नववर्ष अंक
जनवरी 1984
प्रकाशितमन
3 रुपये
21.1.84
१४३६

प्रकाशितमन

नववर्ष अंक

जनवरी, १६८४

संपादक, संस्थापक : दयानन्द योगशास्त्री

यह अंक : ३ रुपये

वार्षिक मूल्य चार विशेषांक सहित : १० रुपये

पत्र-व्यवहार का पता :

प्रकाशितमन ट्रस्ट, W-२१, ग्रेटर कैलाश—१, नयी दिल्ली-११००४८

—जितना धन दूसरों पर प्रकट करो, उससे ज्यादा अपने पास सुरक्षित रखो।

— जितना जानते हो उससे वहुत कम दूसरों को वताओ।

—जितना तुम्हारे पास हो, उससे वहुत कम दूसरों को ऋण में दो।

—जितना सुनकर विश्वास करते हो, उससे ज्यादा जानने का यत्न करो।

—जितना दांव पर लगाते हो, उससे अधिक अपने पास रखो।

तव हर बीस की तुलना में, तुम्हारे पास दो दहाइयों से अधिक होगा।

—शेक्सपीयर ("किंग लियर" से उद्धृत)

क्रम

यह पत्रिका गुजरात राज्य के संयुक्त शिक्षा नियामक द्वारा गुजरात राज्य के पुस्तकालयों के लिए तथा शिक्षा निदेशालय दिल्ली के विद्यालय-पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत है।

कतरनें

हठयोग का प्रशिक्षण

मास्को, १६ अगस्त। सोवियत संघ के खिलाड़ियों को प्रशिक्षित करने तथा रोग के निवारण के लिए अब हठयोग का सहारा लिया जा रहा है।

इसका रहस्योद्घाटन डा० वी० जी० वरोशायजिन ने अपनी पुस्तक 'फिजिकल कल्चर इन इंडियन योग' में किया है।

डा० वरोशायजिन के अनुसार हठयोग इलाज में विशेष लाभकारी है। राजयोग का सहारा हृदय संबंधी और एथलीटों भारोत्तोलक तथा अन्य खिलाड़ियों द्वारा अपने अभ्यास के दौरान काफी किया जाता है।

भारोत्तोलक पहलवान तथा अन्य एथलीट अपनी शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए योगासन करते हैं। योग के नियमों के अनुसार श्वासक्रिया खेल और गले तथा फेफड़ों के इलाज के लिए बहुत नियमित रूप से की जाती है।

डा० वरोशायजिन के अनुसार सोवियत संघ के विशेषज्ञ इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि शीर्षासन रुधिर प्रवाह को सामान्य रखने में बहुत मददगार होता है।

सूंघ कर रोग का पता लगाइए

नई दिल्ली, १० सितम्बर। न्यू जर्सी के एक डाक्टर के अनुसार रोगी को सूंघ कर बीमारी का पता लगाया जा सकता है।

डा० लियोन स्मिथ का कहना है कि इससे पहली नजर में ही रोग का आसानी से पता चल जाता है। उनके अनुसार टायफायड के रोगी का शरीर ताजा ब्रेड जैसा महकता है। पोलियो के रोगी से बूचड़खाने जैसी गंध आती है। गैंगरीन से सड़े सेव जैसी गंध निकलती है।

इस तिमाही के व्रत, उत्सव, मेले

१ जनवरी ८४ से ३१ मार्च ८४ तक

सोमवार	२ जनवरी	सोमावती अमावस्या
मंगलवार	१० ,,	जन्मदिन गुरु गोविन्द सिंह
शुक्रवार	१३ ,,	लोहड़ी
शनिवार	१४ ,,	मकर संक्रांति, एकदशी
सोमवार	१६ ,,	प्रदोष व्रत
बुधवार	१८ ,,	पौष पूर्णिमा, माघ स्नान आरम्भ
शनिवार	२१ ,,	गणेश संकट चतुर्थी
सोमवार	२३ ,,	नेताजी सुभाष जयन्ती
मंगलवार	२४ ,,	स्वामी विवेकानन्द जयन्ती
बुधवार	२५ ,,	श्री रामानन्द जयन्ती
बृहस्पतिवार	२६ ,,	गणतन्त्र दिवस
शनिवार	२८ ,,	एकादशी
सोमवार	३० ,,	महात्मा गांधी निधन दिवस, प्रदोष व्रत
बुधवार	१ फरवरी	मौनी अमावस्या
मंगलवार	७ ,,	वसंत पंचमी, सरस्वती जयन्ती
बृहस्पतिवार	९ ,,	अचला सप्तमी, रथ सप्तमी
शुक्रवार	१० ,,	दुर्गाष्टमी
सोमवार	१३ ,,	एकादशी, कुंभ
मंगलवार	१४ ,,	प्रदोष व्रत, भीष्म द्वादशी

वृहस्पतिवार	१६ ,,	रविदास जयन्ती, माघी पूर्णिमा
रविवार	१६ ,,	गणेश चतुर्थी
शुक्रवार	२४ ,,	सीता अष्टमी
सोमवार	२७ ,,	एकादशी
बुधवार	२७ ,,	महाशिव रात्रि, प्रदोष व्रत
शुक्रवार	२ मार्च	अमावस्या
रविवार	४ ,,	रामकृष्ण जयन्ती
शनिवार	१० ,,	होली आरम्भ, जैन व्रत आरम्भ
मंगलवार	१३ ,,	संक्रांति, एकादशी
वृहस्पतिवार	१५ ,,	प्रदोष व्रत
शुक्रवार	१६ ,,	होलिका दहन
शनिवार	१७ ,,	चैतन्य महाप्रभु जयन्ती
,,	१७ ,,	होला, फाग, धुलैण्डी
शनिवार	२४ ,,	शीतला अष्टमी
मंगलवार	२७ ,,	एकादशी
वृहस्पतिवार	२६ ,,	प्रदोष व्रत

आवश्यक सूचना

पिछले सवा दो वर्ष से प्रकाशित मन के वर्ष भर में चार विशेषांक विशेष भारतीय पर्वों के अवसर पर प्रकाशित होते हैं।

गणतंत्र अंक	:	जनवरी में
वैशाखी अंक	:	अप्रैल में
जन्माष्टमी अंक	:	अगस्त-सितम्बर में
दीपावली अंक	:	अक्तूबर-नवम्बर में

प्रत्येक विशेषांक का मूल्य ३/- रुपये तथा वार्षिक मूल्य १०/- रुपये है।

पुस्तक परिचय

इस स्तंभ के लिए नवीन प्रकाशित पुस्तक की एक प्रति वांछित है—संपादक

पुस्तक : भारतीय शाकाहार
विषय : स्वास्थ्य
लेखक : ताराचंद गंगवाल, पृष्ठ संख्या : ४८, संस्करण : मार्च ८३
मूल्य : ५ रुपए
प्रकाशक : बड़जात्या फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, हल्दिया हाऊस
जौहरी बाजार, जयपुर-३

पुस्तक : मां
विषय : कर्त्तव्य प्रेरक निबंध
लेखक : मुनि चन्द्रप्रभ सागर, पृष्ठ संख्या : ११६, संस्करण : नवम्बर ८२
मूल्य : निःशुल्क
प्रकाशक : महिमा ललित साहित्य प्रकाशन, बीकानेर
प्राप्ति स्थान : पा० वि० शोध संस्थान, आई० टी० आई० रोड
वाराणसी-५

पुस्तक : बलदेव गीता
विषय : भगवद् गीता से असम्बद्ध स्वतन्त्र निवन्ध
लेखक : बलदेव राज दावर, पृष्ठ संख्या : १७२, संस्करण : अक्तूबर ८३
मूल्य : २० रुपये
प्रकाशक : के० सी० वर्मा एण्ड संज, १/४१ सिंह सभा रोड, दिल्ली-७

पुस्तक : सूरज चांद सितारे गाये
विषय : गीत संकलन
लेखक : शशि भोगलेकर, पृष्ठ संख्या : ६२, संस्करण : १९८३
मूल्य : साढ़े आठ रुपए
प्रकाशक : सूर्य प्रभा साहित्य सदन, ११/२७ मराठा मुहाल, रतलाम-४५७००१

१९८४ का कैलेंडर

यह पृष्ठ काट कर अपनी नोट बुक या टेवल पर रखिए। इससे आप जान सकते हैं कि किस तारीख को कौनसा वार पड़ेगा। इसके प्रयोग की विधि आप तनिक गौर करके जान सकते हैं।

—प्रस्तोता : डा० गीताराम शर्मा

जनवरी अप्रैल जुलाई	अक्टूवर	मई	फरवरी अगस्त	मार्च नवम्बर	जून	सितंवर दिसंवर					
रवि	सोम	मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	१	८	१५	२२	२९
सोम	मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	रवि	२	९	१६	२३	३०
मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	रवि	सोम	३	१०	१७	२४	३१
बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	४	११	१८	२५	
वृहस्पति	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	५	१२	१९	२६	
शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	वृहस्पति	६	१३	२०	२७	
शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	७	१४	२१	२८	

धर्म के नाम पर

कथनी से मैं धर्माचार्य हूँ।
करनी से में अकर्माचार्य हूँ।
अधिकार है मुझको प्राप्त
बेचने का अपने पूर्वज
ऋषि-मुनियों की घोर तपस्या को
किसी भी पात्र को
चाहे वह सुपात्र हो
या फिर कुपात्र हो;
मुझे तो मतलब है
केवल इतना कि
मेरे हाथ में थमा रहे हरदम
वह पात्र
जिसमें होता रहे लक्कड़-पत्थर
सभी कुछ हजम;
मैं तो अतीव उपकृत हूँ
अपने मनु का
जिसने विनिर्मित की मेरे लिए
धर्मनाम की चिड़िया।
जिसे मैं बड़ी तत्परता से
किए हुए हूँ धारण अपनी अंगुली पर।
और प्रसारता हूँ मात्र वही आदेश
जिससे पूर्ति होती रहे
स्वार्थ की हरदम;
और फिर तब भोली भाली जनता
या फिर धर्मभीरु लोग
पालन करते रहे सदैव मेरे
अनुचित निर्णयों को
आँख मूँदकर विवेक को
रखकर ताक पर
और अन्ततः ठगे जाते रहें।
हर पल, हर क्षण धर्म के नाम पर
अन्धविश्वासी बनकर।

—रामअवतार अभिलाषी

दिशाहीनता

एक बार एक आदमी ने पीली नदी की घाटी से दक्षिण की ओर याङ्त्सो नदी की घाटी के छू राज्य में जाने का फैसला किया। लेकिन वह रथ पर सवार होकर दक्षिण के बजाय उत्तर की ओर चल पड़ा।

रास्ते में एक आदमी ने उससे कहा : "अरे भाई, तुम गलत दिशा में जा रहे हो। अगर तुम छू राज्य में जाना चाहते हो, तो तुम्हें दक्षिण की ओर जाना चाहिए।"

"तो क्या हुआ। मेरे घोड़े बहुत अच्छे हैं।"

"तुम्हारे घोड़े चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, तुम जा तो गलत दिशा में रहे हो।"

"इससे क्या फर्क पड़ेगा? मेरे पास बहुत-सा धन है।"

"तुम्हारे पास चाहे कितना ही धन क्यों न हो, तुम जा तो गलत दिशा में रहे हो।"

"कोई बात नहीं। मेरा सारथी बड़ा कुशल है।"

उस आदमी ने अपनी गलती नहीं मानी और लगातार गलत दिशा में बढ़ता रहा। नतीजा यह हुआ कि अच्छे से अच्छे घोड़े, ज्यादा से ज्यादा धन और कुशल से कुशल सारथी होने के बावजूद वह छू राज्य से दूर होता चला गया।

—चीन की एक नीति कथा

हम दुःख क्यों भोगते हैं?

—जगवीर सिंह वर्मा

यह निर्विवाद सत्य है कि संसार में अधिकतर लोग किसी न किसी तरह से दुखी हैं। किन्तु क्यों? इस रहस्य का मर्म विरले ही जानते हैं और जान सकते हैं। ज्यादातर यही होता है कि जब हमारी समझ में कोई बात नहीं आती तो हम उसे अपने कर्मों का फल या दुर्भाग्य या परमात्मा की अकृपा अथवा पापों का फल समझकर सन्तोष कर लेते हैं और इस सत्य से आंखें मूंदे रहते हैं कि आदमी अपने कर्म का स्वयं ही विधाता है। यह कर्म-विधान परमात्मा का कोई मनमाना या बिल्कुल ही समझ में न आने वाला नियम नहीं है। बल्कि वह वैज्ञानिक 'कर्म' और 'फल' पर आधारित है।

वैज्ञानिक नियम है कि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, विज्ञान यह भी स्वीकार करता है कि जितनी ही जोरदार क्रिया होगी, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही जोरदार होगी। जैसे, यदि हम दीवार में मुक्का मारें तो जितने ही जोर से मुक्का मारेंगे, उतने ही जोर की चोट हमें लगेगी। इस तरह हर क्रिया का प्रतिफल होता है। यह बात दूसरी है कि वह प्रतिफल दृष्टिगोचर हो या न हो।

इसके साथ ही साथ विज्ञान का यह भी नियम है कि क्रिया और प्रतिफल की गति विपरीत दिशा में होती है, जैसे चोट दीवार को न लगकर हाथ की लगती है यानि मारने वाले को। कर्म विधान दरअसल इसी वैज्ञानिक नियम पर आधारित हैं। गीता में भी श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है:

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

अर्थात् कोई भी क्षण नहीं आता जब मनुष्य बिना कर्म किये रहे। सभी प्रकृति

के गुणों के वश में होकर कर्म करते हैं। गीता में आगे कहा गया है :—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताह मिति मन्यते ॥

सर्वथा प्रकृति के गुणों के कारण जीव कर्म करता है। अहंकार के कारण विमूढ़ आत्मा अपने को कर्ता समझता है। जबकि आत्मा तो कुछ करता ही नहीं है, न उसको दुःख और सुख होता है। वह तो द्रष्टास्वरूप सब देखता रहता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अहंकारवश आत्मा में कर्तृत्त्व भाव आता है। इस अहंकार के भाव के परे जाना बहुत कठिन है। दरअसल जब तक हममें अहंभाव बना है तब तक हममें कर्त्तृत्त्व भाव रहेगा और कर्तृत्त्व भाव आने से हम कर्म के भागी होंगे ही।

यहां यह सन्देह उठना स्वाभाविक है कि श्रीकृष्ण भगवान के कथनानुसार काम तो करती है प्रकृति, फिर हमें दुःख क्यों भोगना पड़ता है ?

सूक्ष्म रूप से देखा जाये तो संसार में जो कुछ होता है, प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव के कारण होता है और उसका फल आत्मा को नहीं प्रकृति के रचित शरीर और मन को मिलता है ! शरीर और मन प्रकृति के गुणों के वशीभूत होकर कर्म करते हैं। अतः कर्म का प्रतिफल शरीर और मन पर पड़ता है कि न आत्मा पर जो केवल द्रष्टास्वरूप देखता रहता है।

यदि हम स्वयं को आत्मा समझें जो शरीर, मन और बुद्धि के परे है तो हमको दुःख नहीं पहुंचेगा, क्योंकि हम स्वयं को शरीर और मन से भिन्न नहीं समझते हैं, हमें दुःखों की अनुभूति होती है। जब तक हमारी चेतना इतनी उच्चस्तर तक नहीं उठ पाती कि हम स्वयं को शरीर और मन से भिन्न समझें ! इसलिए यह बात किसी हद तक स्पष्ट हो जाती है कि वैज्ञानिक नियम, कारण और फल के अनुसार हमारे कर्मों का प्रतिफल हमारे ऊपर पड़ेगा ही।

हम मन, वचन और कर्म, तीन ढंग से काम करते हैं और वैज्ञानिक नियम के अनुसार तीनों ढंगों के कर्मों का प्रतिफल है और यह फल कर्ता को भोगना पड़ता है। हमारे कार्यों का ही नहीं, विचारों का भी फल हमें भोगना पड़ता है। इसका अनुभव

वहुत कम लोगों को होता है । साधारणतः हमें यही ख्याल रहता है कि हम यदि मन ही मन किसी के वारे में वुरा भाव या विचार रखते हैं तो हम वुराई के कर्ता नहीं हैं। मगर यह भ्रम है, ऐसा साहित्य उपलब्ध है जिससे विचार की शक्ति के वारे में पूर्ण जानकारी मिल सकती है। किन्तु संक्षेप में हम उसी सम्वन्ध में यहां प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

जो विचार हमारे मन में उठते हैं, वे विचार मानसिक जगत के तत्त्वों का रूप धारण कर लेते हैं और वे रूप सोचने वाले के आस-पास मंडराते रहते हैं। स्वभावतः जिनके वारे में यह विचार किये जाते हैं, उनकी ओर भी आकर्पित होते रहते हैं और उनके मन में भी वैसे ही विचार पैदा करते हैं। दूसरी वात यह कि इन विचार रूपों में ऐसी शक्ति होती है कि समान विचार वाले रूपों से मिलकर वे और भी शक्तिशाली वन जाते हैं और इससे वातावरण दूषित हो जाता है।

हमारा मन इन विचारों को पैदा करने वाला होने के कारण वह इनका प्रतिफल भोगने का भागी वन जाता है। उपनिपद् में भी इस सम्वन्ध में उल्लेख है:

यथा मनसा ध्यायति, तथा वचसा वदति।
यथा कर्मणा करोति, तथा अभिसंपद्यते।

अर्थात् जैसा मन में सोचते हैं, मुंह से वैसा ही वोलते हैं और जैसा मुंह से वोलते हैं, वैसा ही कर्म करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे विचार ही अन्ततः कर्म वनते हैं। यही नियम वाचिक कर्मों में भी लागू है। कहा गया है, 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, सत्यमपि अप्रियम मा ब्रूयात्।

अर्थात् सत्य वोलो, प्रिय वात वोलो, सत्य भी अप्रिय हो तो मत वोलो।

भले ही कोई फल हमारे कर्म का फल है, यह दृष्टिगोचर न हो, परन्तु सिद्धांत के अनुसार हमें मानना पड़ेगा कि हमारे कर्म का फल है ही। यह नित्य प्रति के अनुभव की वात है कि कर्मफल कभी-कभी वहुत देर वाद भोगना पड़ता है।

साधारणतः कर्मों को तीन भागों में वांट दिया गया है:—

(१) एक तो वह कर्म है जिसे हम लोग नित्य प्रति करते रहते हैं, उनके फल को क्रियामाण कर्म कहा जाता है।

(२) दूसरे वे कर्म जिनका प्रतिफल तुरन्त नहीं मिलता, जमा होता रहता है, इस जमा किये हुए कर्म को **संचित कर्म** कहा जाता है।

(३) जब जीव जन्म लेने लगता है तो संचित कर्मों में से कुछ ही अच्छे और बुरे कर्म हम भोगते हैं जिनका भोगना हमारे विकास के लिए निहायत जरूरी होता है और जिनकी गांठ ज्यादा सख्त होती है, इसको **प्रारब्ध** कहते हैं। ऐसे कर्मों को बहुत बलवान माना गया है। उन्हें हर हालत में हमें भोगना ही पड़ता है। प्रारब्ध कर्माणां भोगादेव क्षयः, अर्थात् प्रारब्ध कर्मों का भोग से ही नाश होता है।

जीवन में जैसे हम देखते हैं कि कभी-कभी कोई आदमी सफलता के लिए आजीवन चेष्टा करता रहता है, फिर भी सफलता जैसे रूठी बैठी रहती है। और कभी-कभी थोड़ी-सी चेष्टा करने पर ही सफलता पैर चूमती देखी जाती है। तब लगता है कि यह सब प्रारब्ध की वजह से ही है।

ज्ञानियों ने कहा है कि जीवन निर्माण में दुःख बड़ा उपयोगी है। सुख में आदमी मूर्च्छित रहता है जबकि दुःख में सजग।

प्रारब्ध नाशवान नहीं माना गया है, जबकि संचित नाशवान है। यदि हम नित्यप्रति के जीवन में क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, वैसा ही क्यों कर रहे हैं या सोच रहे हैं, इस पर ध्यान रखें तो काफी हद तक दुःख के भोग से बच सकते हैं।

मंगलू दादा शहर का माना हुआ बदमाश था। मदन बाबू अपने चन्द स्वार्थों के पीछे, पैसे के जोर पर मंगलू से अब तक अनेक हत्यायें करवा चुके थे। मंगलू, जो पैसे की खातिर किसी का भी खून कर सकता था, पर मदन बाबू को बड़ा नाज़ था।

उस दिन अचानक मंगलू को कोई अन्य तगड़ा ग्राहक मिल गया और फिर दूसरे ही दिन पाँच हजार रुपयों के पीछे उसने मदनबाबू का ही खून कर डाला।

—किशोर श्रीवास्तव 'संध्या'

होली मुगलकाल की

—प्रभातकुमार सिंघल

अबीर गुलाल के उड़ते रंग-बिरंगे बादल सारी फिज़ा को ही रंगमय बना देते हैं। होली का नाम लेते ही दिल-मयूर नाचने लगता है। फागुन मास में सरसों अलसी आदि फसलों पर रंग-बिरंगे सफेद-पीले फूलों की छवि ही निराली होती है, गेहूं तथा जौ में बालियां खुशहाली का प्रतीक होती हैं, आम पर बौर फूट पड़ते हैं, जगह-जगह बाग रंग-बिरंगे फूलों से महक उठते हैं। उल्लासपूर्ण वातावरण चहुं ओर छा जाता है।

ऐसे रंगीन मौसम में अब प्रकृति ही रंगमय हो आती है। होली का त्यौहार क्षेत्रीय सीमाएं लांघकर अमीरी-गरीबी के भेद को पाटकर आपसी दुश्मनी समाप्त कर सबको समानता के धरातल पर ला खड़ा करता है।

होली हर युग में बड़ी ही आन-बान से मनाई जाती है, पर मुगल काल की होली की अपनी विशेषता रही है। शाही महलों में खेली जाने वाली होली अपने आप में मनोरंजन का असीम खजाना समोये है। उस होली की अनेक रंगीन दास्तानें प्रचलित हैं।

मुगलों में सभी शासक जाति से यद्यपि मुस्लिम थे परन्तु कई शासक हिन्दू त्यौहारों को बड़े चाव से मनाते थे, इसी समानता के कारण अकबर राष्ट्रीय शासक कहलाया तथा जहांगीर का न्याय जग में प्रसिद्ध हुआ। यदि वे जातीय बंधनों में बंधे रहते तो कैसे इन पदवियों को अर्जित कर सकते थे।

मुगल शासक-जहांदार शाह बड़ा रसिक मिजाज था। वह होली का पर्व अपनी चहेती लाल कुंवर के साथ मनाया करता था। लाल कुंवर उसकी रखैल थी। एक बार होली की बात है कि इनकी प्रेमिका ने कहा कि होली इत्र से खेलें तो कैसा रहेगा। होली के रंगीन पर्व पर प्रेमिका का दिल सुल्तान कैसे तोड़ता, अतः उसी समय बादशाह ने दिल्ली का सारा इत्र खरीद लिया और होली इत्र से खेली, इत्र की होली का नशा सारे हरम में दीवारों व कमरों में कई महीनों तक रहा।

सम्राट अकबर के समय अन्तःपुर होली के समय लाल रंग के गुलाल से रंगा रहता था। इतिहासकारों का मत है कि मुगल हरम की नाजनीनें बादशाह को हरम में बुलाकर उनसे रंग भरी होली खेलती थीं।

बादशाह जहांगीर के एक होली के चित्र से पता चलता है कि बादशाह अपनी बेगम नूरजहां के साथ खड़े हैं। उनके पास घड़ों में रंगीन पानी है जिसे पिचकारियों में भरकर कुछ लड़कियां एक-दूसरे को रंग से सराबोर कर रही हैं। रंग को लाल रंग से चित्रित किया गया है। अबीर के बादल भी उड़ते दिखाये गये हैं।

ऐसा ही एक चित्र और है जिसमें हरम की सुन्दरियां रंगीन पानी पिचकारी से एक-दूसरे पर डाल रही हैं। वह चित्र शाहजहां के काल का है।

सम्राट फर्रुखसियर के समय के दो चित्र हैं। एक में दो दासियां जल रंग, इत्र व गुलाल लिये खड़ी हैं तथा होली की खुशी नाच गाकर मनाई जा रही है। मोहम्मद शाह रंगीले के समय में भी होली के प्रचलन का पता उसके एक फोटो से चलता है जिसमें बादशाह एक हाथ में चांदी की पिचकारी व दूसरे में गुलाल लिए अपनी बेगम की तरफ मुखातिब है।

मुगल शासकों के होली से सम्बन्धित हरम के ये चित्र आज भी लन्दन व पटना

(शेष पृष्ठ २० पर)

दृढ़ संकल्प

—सुषमा सेंगर

एक बार भगवान अपनी सृष्टि को देखने निकले। धरती पर पहुँच कर उन्होंने देखा कि एक कृषक फावड़ा लेकर विशाल पर्वत को खोद रहा है। भगवान को उसका दुस्साहस देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका कारण पूछा।

कृषक ने वताया—'वादल आते हैं और इस पर्वत से टकरा कर इसके दूसरी ओर वर्षा कर देते हैं। मेरे खेत सूखे ही रहते हैं। अतएव इसे मैं यहाँ से हटाकर ही चैन लूँगा।'

'पर इतने वड़े कार्य को तुम अकेले कर पाओगे ?' भगवान अपना आश्चर्य न रोक सके।

कृषक वोला—'मेरा दृढ़ संकल्प है। मैं इसे निश्चित ही हटा दूँगा।'

भगवान कृषक के आत्मवल से प्रभावित होकर आगे वढ़े। तभी गिरिराज गिड़गिड़ाने लगे—'भगवन्। यह कृषक छोटा है तो क्या, उसका संकल्प दृढ़ है, उसका आत्मविश्वास अडिग है। इन दोनों के द्वारा वह मुझे निश्चित ही हटाकर मानेगा। संकल्प शक्ति और आत्मविश्वास से असम्भव कार्य भी सम्भव वन जाते हैं।'

व्रत-उपवास

—सरला लोकेन्द्र

प्रत्येक भारतीय परिवार में किसी न किसी रूप में व्रत, उपवास, किये जाने की परम्परा प्रचलित है। हिन्दू, सिक्ख, जैन, मुस्लिम और अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा व्रत और उपवास को मान्यता है। जहां तक महिलाओं का प्रश्न है वे व्रत और उपवास करने में कभी-कभी तो असामान्य और अति कठिन व्रतों को निभा लेती हैं।

व्रत कई प्रकार के हैं—वार व्रत, तिथि व्रत, मास व्रत, पर्व व्रत आदि। परिवार का हित और कल्याण चाहने के लिए महिलायें इनमें से किसी व्रत को चुनकर करती हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में भी व्रत की अद्‌भुत महिमा का गुणगान किया गया है। ऋषि देवल ने तो व्रत और उपवास के नियम पालन से शरीर को तपाने को ही तपस्या निरूपित किया है, किन्तु इतनी महत्वपूर्ण सामाजिक परम्परा के सम्बन्ध में भी अधिकांश लोगों को पूरी जानकारी नहीं है तथा व्रत करने वाली महिलाओं को व्रत के प्रारम्भ, परिपालन और उद्यापन की सही विधि को न जानने के कारण अपने द्वारा किये गये व्रत का वास्तविक लाभ नहीं मिल पाता है। व्रत और उपवास के सम्बन्ध में आवश्यक प्रारम्भिक जानकारी हुए बिना व्रत करना निष्फल हो जाता है।

सर्वप्रथम व्रत और उपवास में अन्तर जान लेना आवश्यक है। व्रत में भोजन

किया जा सकता है पर उपवास में निराहार रहना पड़ता है।

तीन प्रमुख उद्देश्य व्रत एवं उपवास के होते हैं। पुण्य-संचय, पाप-क्षय और कामना की पूर्ति।

प्रत्येक वाल, युवा, वृद्ध व्रत कर सकता है तथा व्रत प्रारम्भ करने के लिए किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है। पर विवाह के पश्चात् स्त्री को बिना पति की अनुमति के किसी व्रत का प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। स्कन्द पुराण में स्पष्ट लिखा है कि सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए पति की सेवा के सिवाय न तो कोई यज्ञ है, न व्रत है और न ही उपासना। फिर भी यदि वे करना चाहें तो पति की अनुमति प्राप्त कर व्रत प्रारम्भ कर सकती हैं।

अतः व्रत प्रारम्भ करने के पूर्व अपनी आवश्यकता के अनुरूप फलदायी व्रत का चयन करना आवश्यक है। पुण्य-संचय, पाप-क्षय अथवा कामना-पूर्ति, जो भी उद्देश्य हो जब उसकी पूर्ति के लिए अभीष्ट व्रत का चुनाव कर लें एवं कितनी अवधि तक उस व्रत को करना है, यह भी पूर्व निश्चित कर लें। इसके वाद ही शुभ मुहूर्त में शुभ दिन व्रत प्रारम्भ करें।

व्रत का प्रारम्भ जिस दिन से करना हो, उसके एक दिन पूर्व से ही आवश्यक व्यवस्था कर लेनी चाहिए तथा रात्रि में शीघ्र शयन करके, उषाकाल में उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त होकर विना कुछ भोजन मुंह में डाले सूर्य और व्रत के अधिष्ठाता देवता का पूजन कर व्रत का प्रारम्भ करना चाहिए।

व्रत में बार-बार जल पीना, दिन में सोना, पान खाना तथा सहवास वर्जित है। क्षमा, दान, दया का धारण उचित और आवश्यक है। जल, फूल, मूल, दूध, औषधि और पूज्यजनों के वचन ग्रहण करने चाहिए। इसके अतिरिक्त सेके हुए जौ का चूर्ण (सत्तू), जौ, तुरई, ककड़ी, मैथी, गाय का दूध, दही, घी, आम, अनार, नारंगी तथा केले खाये जा सकते हैं।

उपरोक्त नियमों का पालन करते हुए व्रत करते रहना चाहिए तथा निश्चित अवधि पूर्ण होने पर व्रत का उद्यापन करना चाहिए। उद्यापन की विधि भी प्रत्येक व्रत के लिए पृथक है।

सनातन धर्म में होने वाले व्रतों का वर्गीकरण मास व्रत, पक्ष व्रत, तिथि व्रत

तथा पर्व व्रत से है। उदाहरणार्थ कार्तिक आदि के व्रत मास व्रत, शुक्ल और कृष्ण प
के पक्ष व्रत, एकादशी, अमावस्या आदि के व्रत तिथि व्रत हैं। सोमवार, गुरुवार आ
के व्रत वार व्रत होते हैं तथा जन्माष्टमी, रामनवमी आदि के व्रत पर्व व्रत हैं।

व्रतों के विस्तार के कारणों का अध्ययन व मनन करने से यह ज्ञात होता है
केवल पुण्य-संचय, पाप-क्षय या कामना की सिद्धि ही व्रतों के व्यापक प्रचार का का
नहीं है, अपितु दो अन्य कारणों ने भी व्रतों की परम्परा को लोकप्रियता का आधा
दिया है।

शरीर की शुद्धि भी व्रत का एक उद्देश्य है। निराहार रहकर शारीरिक स्वास्
की रक्षा करना उपवास करने का एक अन्य उद्देश्य है। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण मन
वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक पक्ष आत्म-नियन्त्रण एवं संकल्प-शक्ति का क्रमशः विका
कर व्यक्तित्व को सबल बनाना है।

क्षुधा और रसना की वृत्ति का दमन कर व्रत करते-करते हम अपनी इन्द्रि
को अपनी इच्छानुसार नियन्त्रित कर सकते हैं तथा असुविधा एवं कष्ट को दृढ़ संक
के सहारे सह सकने की शक्ति का विकास हो सकता है।

सम्भवतः आत्म-नियन्त्रण और संकल्प-शक्ति के विकास के दृष्टिकोण के अन्त
ही लगभग सभी धर्मों में व्रत एवं उपवास आवश्यक कृत्य बताये गये हैं।

(पृष्ठ १६ का शेष)
के पुस्तकालय तथा पेरिस के संग्रहालय में सुरक्षित रखे हुए हैं। तुज्के-ए जहां
नामक ग्रंथ में जहांगीर के समय की होली का वर्णन आता है।

होली का प्रचलन मुगल काल में 'नवरोज' के नाम से था। प्रत्येक कमरे
संवारा जाता था। केसरिया रंग से बालटियां भरी जाती थीं। घड़ों में लाल रंग
जाता था। होली खेलने में पिचकारी व गुलाल का प्रयोग होता था। रात्रि को ना
गाने से महफिल सजती थी।

मुगल हरम में होली पर जहां इत्र से होली का उल्लेख मिलता है, वहीं
भी बड़ी अच्छी परम्परा थी कि होली पर भांग, शराब व नशीले पदार्थों का प्र
नहीं होता था।

जुकाम : कारण और निवारण

—धर्मवीर अरोड़ा 'भारत'

सर्दी का मौसम शुरू हुआ नहीं कि 'जुकाम लगने' की शिकायत शुरू हो जाती है। सर्दी लगने के अतिरिक्त अपच, रात्रि जागरण, अकस्मात् पसीना आना बन्द होना, गर्मियों की कड़ी धूप में घूमना, वर्षा के जल में भीगना आदि कारणों से भी प्रायः जुकाम लग जाता है।

निम्नलिखित किसी एक उपाय से यह रोग दूर हो सकता है—

☐ शुद्ध जल में हींग घोलकर दिन में दो-चार बार सूंघिए, आराम शीघ्र मिलेगा।

☐ जुकाम में नींबू बहुत लाभदायक है। पानी में नींबू का रस घोलकर दिन में कम-से-कम तीन बार सेवन करें।

☐ लौंग का तेल सूंघने से भी जुकाम होता है।

☐ जुकाम लगने पर उपयुक्त मात्रा में, थोड़ी-थोड़ी देर बाद, भने हुए चने खाइए, आराम मिलेगा।

☐ दो चम्मच अजवायन को हाथों से अच्छी तरह मसल लें। फिर इसे दिन में बार-बार सूंघते रहें।

इन उपायों को अपनाने के बाद भी यदि जुकाम से छुटकारा न मिले तो किसी योग्य चिकित्सक से मशवरा लीजिए।

प्रेम की भाषा

— शम्सुद्दी

शेक्सपियर ने एक स्थान पर लिखा है—"तुम्हें जो कुछ चाहिए उसे अपनी **मुस्कराहट से प्राप्त करो, न कि तलवार के जोर से।"**

मुस्कराहट प्रेम की भाषा है और इसके द्वारा बड़े-बड़े कार्य आसानी से कराए जा सकते हैं।

जो व्यक्ति हंसमुख है, प्रसन्नमन है और प्रेम का व्यवहार करना जानता है वह संसार में हमेशा सफलता प्राप्त करता है। वह जहां भी जाता है, वातावरण को आनन्दमय और उल्लासपूर्ण बना देता है। जिस समाज में रहता है उसका सरताज बन जाता है तथा जिस देश में जाता है, उसे अपना बना लेता है। इस दुःख और दर्द से भरे संसार में, जो दूसरों को पल भर के लिए भी स्वर्गीय सुख और आनन्द दे, उसका स्वागत और सम्मान कौन नहीं करना चाहेगा ?

प्रेम की भाषा बड़ी सीधी, सरल और निष्कपट होती है। उसमें दुराव-छिपाव अथवा बनाव-सिंगार के लिए कोई स्थान नहीं रहता। वह सदा विनम्र, मधुर और शिष्ट रहती है। वह किसी का दिल नहीं दुखाती बल्कि कटु वचनों की अग्नि पर शीतल जल का काम करती है। प्रेम की भाषा में ऐसा अद्भुत जादू होता है कि वह दुष्ट को

भी दयालु तथा कठोर को भी विनम्र बना देता है।

गदाधर भट्ट नामक गुरु के शिष्य और सेवक उनके आश्रम में खाने-पीने की बहुत-सी सामग्री भेजते थे और कई लोग उन्हीं के यहां भोजन करते थे। एक दिन रात को चोर वहां आया और गठरी में बहुत सी खाद्य सामग्री बांधकर उठाने लगा। गठरी का बोझ इतना अधिक हो गया था कि उससे उठ नहीं रहा था। इतने में ही गदाधर भट्ट वहां आ पहुंचे और चोर को गठरी उठाने में मदद करने लगे। चोर डरा और गठरी छोड़कर भागने लगा। गदाधर भट्ट बोले,—"बेटा, डरो मत। यह सामान तुम ही ले जाओ। यहां भी लोग इसे खायेंगे और तुम्हारे घर में भी खायेंगे। यहां तो ईश्वर की कृपा से बहुत सी सामग्री है किन्तु तुम्हारे घर शायद इसकी कमी हो। अब झटपट गठरी उठाओ और यहां से चले जाओ। मैंने यह सामग्री तुम्हें दे दी।"

भट्ट जी की प्रेममयी वाणी सुनकर चोर शर्म से पानी-पानी हो गया। उसने उन्हें प्रणाम किया और बोला—"इसे तो मैं आपका दिया प्रसाद समझ आज लिये जाता हूं किन्तु अब प्रतिज्ञा करता हूं कि आगे कभी चोरी नहीं करूंगा और मेहनत-मजदूरी करके अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करूंगा।"

प्रेम की भाषा जानवर भी समझते है फिर मनुष्य की तो बात ही और है। कुत्ते को आप रोटी का टुकड़ा फेंककर दे दीजिये। वह चुपचाप उसे उठाकर चला जायेगा। आप पर एक नजर भी नहीं डालेगा। इसके विपरीत यदि आप कुत्ते को अपने पास प्यार से बुलायें, पुचकार कर उसके सिर पर हाथ फेरें, और फिर रोटी का टुकड़ा उसे दें तो वह अपनी पूछ हिलाकर प्यार से आपकी ओर देखेगा, आपके पैर चाटेगा और फिर रोटी खाते हुए इस प्रकार आपकी ओर दृष्टि डालेगा मानो अपनी कृतज्ञता प्रगट कर रहा हो।

इसी संदर्भ में मुझे अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक इमर्सन की एक घटना याद आती है। उन्हें गाय पालने का बड़ा शौक था, इसीलिए गाय और नन्हें बछड़े उनके मकान के पास एक कुटी में रहते थे। एक बार जोर की बारिश आने वाली थी। सारी गायें तो कुटी के अन्दर चली गईं किन्तु एक बछड़ा बाहर ही रह गया। इमर्सन और उनके पुत्र ने मिलकर बहुत कोशिश की कि बछड़े को खींचकर झोंपड़ी के अन्दर ले जायें किन्तु

वह न माना। उसे ज्यों-ज्यों आगे खींचा जाता, वह अपनी पूरी ताकत लगाकर पीछे हट जाता। वेचारे इमर्सन वहुत परेशान थे। इतने में उनकी बुढ़िया नौकरानी वहां से निकली। जैसे ही उसने यह तमाशा देखा वह दौड़ी हुई बछड़े के पास गई और अपना अंगूठा बछड़े के मुंह में प्यार से डालकर उसे धीरे-धीरे झोंपड़ी की ओर ले जाने लगी। बछड़ा चुपचाप कुटी के अन्दर चला गया।

वह अनपढ़ बूढ़ी नौकरानी भले ही किताबें और कवितायें लिखना न जानती हो किन्तु प्रेम की भाषा पर उसका अधिकार अवश्य था। बछड़ा भी प्रेम की भाषा समझता था, तभी तो वह नौकरानी के इशारे पर कुटी में चला गया। इस प्रकार जव जानवर भी प्रेम के वश हो जाते हैं तो फिर मनुष्य, जिसे ईश्वर ने बुद्धि और विवेक दिया है, क्योंकर सही रास्ते पर नहीं लाये जा सकते ?

आज कई माता-पिता शिकायत करते पाये जाते हैं कि उनके बच्चे अनियन्त्रित होते जा रहे हैं और घर में किसी की नहीं सुनते। शालाओं में शिक्षक शिकायत करते हैं कि छात्र उद्दण्ड हो गये हैं और अनुशासन में नहीं रहते। कुछ इसी तरह की शिकायतें घर मालिकों की नौकरों के खिलाफ तथा मिल मालिकों की मजदूरों के खिलाफ सुनाई देती हैं। ये सभी यदि प्रेम की भाषा सीख लें तथा स्नेह, सहानुभूति एवं उदारता से व्यवहार करने लगें तो कहीं कोई अनुशासनहीनता न रहे, कहीं कोई झगड़े-फसाद न हों और समाज एवं राष्ट्र में सर्वत्र सुख-शांति का साम्राज्य फैल जाय।

वार्षिक ग्राहकों से निवेदन है कि—

सरकुलेशन संबंधी पत्र-व्यवहार में अपना सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। प्रकाशित मन प्रत्येक मास की १० ता० के आसपास पोस्ट किया जाता है और १५ तारीख के आसपास पाठकों तक पहुंच जाता है। यदि इस तिथि तक अंक न मिले तो समझें कि डाक विभाग की भेंट हो गया। अप्राप्ति की शिकायत आने पर वार्षिक ग्राहकों को अन्य प्रति भेज दी जाती है।

दिल की कहानी—दिल की जबानी

—डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

मैं आपका 'दिल' हूं जो आपके सीने में धड़कता हूं। प्रचलित भाषा में मेरा नाम दिल ही है; लेकिन संस्कृत में मुझे 'हृदय' और अंग्रेजी में 'हार्ट' कहते हैं। मेरा जन्म कब हुआ और मनुष्य से मेरा सम्वन्ध कितना पुराना है इसकी मुझे याद नहीं, परन्तु इतना मैं जानता हूं कि मनुष्य ने मुझे काफी देर से पहचाना।

यूरोपीय चिकित्सा-वैज्ञानिकों का कहना है कि मेरे काम के वारे में आधुनिक विज्ञान के अनुसार सन् १६२८ में सवसे पहले वार्थोलोम्यु अस्पताल लन्दन के चिकित्सक डॉ० विलियम हार्वे ने पता लगाया कि 'दिल शरीर में खून को पम्प करता है।' इनसे पहले मेरे वारे में वैज्ञानिक इतना ही समझते थे कि कदाचित् मेरा कुछ सम्वन्ध शरीर में रक्त-संचालन से है। लेकिन इन वैज्ञानिकों की यह मान्यता सौ फी सदी सही नहीं है।

ईसा से २००० से १००० वर्ष पूर्व भारत के चिकित्सक-अग्रणी महर्षि चरक और सुश्रुत ने मेरे वारे में बहुत-कुछ जान लिया था। 'चरक संहिता' में विमान स्थान अध्याय ५ में वर्णन है :

"रसवहानांस्रोतसां हृदय मूल च दमन्य:"

हृदय के निर्माण की यह रूपरेखा एक वड़ी हद तक सही है। हृदय में कारनरी आर्ट्री सहित आने और जाने वाली रक्त-नलिकाओं की संख्या वास्तव में ९ है।

इसके अतिरिक्त रक्त का यकृत (जिगर) एवं प्लीहा (तिल्ली) से घनिष्ठ सम्वन्ध होता है, इसका संकेत भी उसी स्थान पर दिया हुआ है—

"शोणिवहानां स्रोतसां यकृन्मूलं प्लीहा च"

'सुश्रुत संहिता' एवं 'चरक-संहिता' में हृदय-रोगों के वे ही सब लक्षण दिए हैं

जो आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान बताता है।

ग्रीस में ईसा से ३०० से २५० वर्ष पूर्व 'एरासिस्ट्रास' एक वैज्ञानिक हुआ है। उसने 'हृदय' को एक पम्प के समान बताया है और नाड़ी को हृदय से आने वाली लहर माना है। परन्तु एरासिस्ट्रास के इन अन्वेषणों को कई शताब्दियों बाद दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा मान्यता प्राप्त हुई। ग्रीस में ही ईसा से लगभग २५ वर्ष पूर्व और ५० वर्ष बाद तक के समय में 'कैल्सस' नामक एक वैज्ञानिक हुआ जिसने मेरे रोगों के बारे में लिखा अर्थात् 'हृदय के रोग' नामक शब्द की उत्पत्ति की। उसने यह भी प्रमाणित किया कि रक्त हृदय से चलकर फिर वापस हृदय में ही पहुंचता है। वस्तुतः इन खोजों ने उन सीढ़ियों की स्थापना की जिन पर चढ़कर मेरे बारे में आधुनिक विज्ञान बहुत-कुछ जान सका है।

सन् १६२८ में हार्वे महोदय की खोजें कदाचित् इसलिए जल्दी प्रकाश में आ सकीं, क्योंकि विज्ञान बहुत-कुछ आगे बढ़ चुका था और खोजों एवं जानकारियों को सुरक्षित रखने के साधन प्रेस आदि का आविष्कार हो चुका था। अनुमान यह है कि हार्वे महोदय ने भी प्राचीन शरीर-वैज्ञानिकों की खोजों में सहायता ली। बहरहाल हार्वे महोदय की शोधों का मूल्य भी घटाकर नहीं आंका जा सकता। उन्होंने पूर्व-परीक्षण द्वारा मेरी समस्त गतिविधियों का पता चलाकर चिकित्सा-विज्ञान में भारी योगदान दिया है। इसलिए उनकी गणना विश्व के महान् वैज्ञानिक में की जाती है।

जब तक मुझे सही रूप में नहीं पहचाना जा सका तब तक लोग यही मानते थे कि मैं मुख्य रूप से प्रेम, साहस, सुख, दुःख, भय सन्तोष आदि भावनाओं का केन्द्र हूं। इस धारणा के मातहत कवियों और शायरों ने न मालूम अब तक कितना-कुछ मेरे बारे में लिख डाला है। कितने उपन्यासों और कहानियों में मुझे लपेटा है। जहां-जहां भावनाओं का प्रसंग आया है सब जगह मेरी ही दुहाई दी गई है।

लम्बे अर्से से मुझे जो भावनाओं का केन्द्र होने का श्रेय मिला है, वह आज भी लोक-व्यवहार में उसी तरह चला आ रहा है; जबकि भावनाओं की उत्पत्ति से मेरा कोई ताल्लुक नहीं है।

भावनाएं दरअसल मस्तिष्क में पैदा होती हैं। लेकिन इस अतिरिक्त रूप से

मिले हुए श्रेय की मुझे कोई शिकायत नहीं है। इससे मेरा महत्त्व वढ़ा ही है, घटा नहीं।

मेरा कार्य

अपने इस संक्षिप्त इतिहास के वाद मैं आपको यह वताना चाहूंगा कि मैं आपके शरीर में क्या करता हूं। अपने रहने का संकेत मैं आपको शुरू में ही दे चुका हूं कि मैं आपके सीने (छाती) में रहता हूं।

फेफड़े, जिगर तथा मस्तिष्क जैसे आपके शरीर के दूसरे अवयवों की तुलना में मेरा आकार काफी छोटा है, अर्थात् मेरा आकार आपके हाथ की बंधी हुई मुट्ठी से मामूली-सा वड़ा है। लेकिन किसी भी वस्तु का मूल्यांकन उसके डीलडौल से नहीं, वरन् उसके काम से, उसकी उपयोगिता से होता है। तो छोटा होते हुए भी मैं आपके शरीर में इतना महत्त्वपूर्ण काम करता हूं कि मुझे शरीर का 'राजा' होने की संज्ञा दी गयी है। आगे अपने वारे में मैं जो कहने जा रहा हूं, उसमें निश्चय ही आपके मुंह से निकलेगा कि—"वाकई दिल शरीर का राजा होता है।"

अपने काम के वारे में कुछ कहने से पहले मैं अपने सम्बन्ध में कुछ और तथ्य आपको वता देना चाहता हूं ताकि आपको आगे की वातें समझने में सुविधा रहे।

मेरी शक्ल पान के पत्ते-जैसी कुछ तिकोनी है। नीचे का तिकोना भाग कुछ वाईं ओर को रहता है और ऊपर का चौड़ा भाग ठीक आपकी छाती के वीच में पड़ता है। पुरुषों में मेरा वजन ३०० से ४०० ग्राम तक तथा स्त्रियों में २९० से ३६० ग्राम तक होता है। लेकिन इस वजन की कमी-वेशी से मेरे काम में कोई अन्तर नहीं आता। स्वभावतः प्रत्येक व्यक्ति में दिल का आकार और वजन थोड़ी भिन्नता लिये होता है।

यहां मैं अपने काम का थोड़ा-सा आभास आपको दे दूं कि मैं खून के लेन-देन का व्यापार करता हूं। परन्तु इस कथन से आप मुझे कोई कातिल या खूनी न समझ लेना, अपितु मैं आपके शरीर को जीवित रखने के लिए खून सप्लाई करता हूं। मैं इस काम को किस तरह अंजाम देता हूं, वह सब जानने के लिए आपको मेरे अन्तर में झांकना होगा। आइए मैं आपको अपने भीतरी हिस्से की सैर कराऊं।

देखिये! मेरे पास ये कुल चार कमरे हैं; दो नीचे, दो ऊपर; या यों कहिये कि

दो दायीं ओर हैं और दो बायीं ओर। इन्हीं से मैं अपना पूरा रक्त-व्यापार चलाता हूं। इस व्यापार के रहस्य को समझने के लिए पहले यह समझें कि रक्त आपके शरीर के लिए क्यों जरूरी है।

आपका पूरा शरीर विभिन्न प्रकार के बहुत सूक्ष्म कोषों के समूह से बना है जैसे मांस के कोष, हड्डियों के कोष, स्नायुओं के कोष आदि। ये कोष वस्तुतः इतने छोटे होते हैं कि आप इन्हें आंखों से नहीं देख सकते। ये सूक्ष्म-दर्शक (माइक्रोस्कोप) यन्त्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। इन कोषों को जिन्दा और कार्यशील रहने के लिए भोजन, पानी और शुद्ध हवा चाहिए। ये तीनों जरूरी तत्त्व कोषों को रक्त द्वारा ही मिलते हैं। दूसरे शब्दों में मैं यह कहूंगा कि मैं ही इन तत्त्वों को रक्त के द्वारा कोषों के पास पहुंचाता हूं, यानि सप्लाई का काम करता हूं।

यहां आपके मन में यह शंका उठ सकती है कि मेरे पास यह शुद्ध हवा, भोजन और पानी कहां से आता है? आपकी शंका युक्तिसंगत है और इसका समाधान भी बहुत जरूरी है। इस काम के लिए आपके शरीर में छोटी-बड़ी रक्त-नलिकाओं का एक बहुत लम्बा-चौड़ा जाल फैला हुआ है जिसके माध्यम से यह सप्लाई का काम पूरा होता है। इस जाल की शाखाएं आपके शरीर के सूक्ष्मतम भाग में पहुंची हुई हैं।

तो पहले मैं आपको हवा की बात बता दूं जो कि मेरा मुख्य धंधा है। आपके जिन्दा रहने के लिए हवा बहुत जरूरी है। भोजन और पानी के बिना आप कई हफ्ते निकाल सकते हैं लेकिन यदि चन्द मिनट भी आपको हवा न मिले तो तत्काल आपकी मृत्यु हो सकती है।

मैं शुद्ध हवा अर्थात् ऑक्सीजन से भरा शुद्ध रक्त शरीर में भेजता हूं। ऑक्सीजन के कारण इस शुद्ध खून का रंग चमकीला लाल होता है। पहले मैं शुद्ध खून को एक मोटी-सी नली में धकेलता हूं जिसे महाधमनी (एओरेटा) कहते हैं। यह धमनी फिर छोटी-छोटी शाखा-प्रशाखाओं में बंटती चली जाती है और शरीर के अंग-प्रत्यंगों को शुद्ध हवा बांटती चलती है। अन्त में इन धमनियों की शाखाएं बाल से भी ज्यादा बारीक हो जाती हैं जिन्हें केशिकाएं कहते हैं।

जब शुद्ध रक्त की ऑक्सीजन समाप्त हो जाती है तो इसमें गन्दी हवा कार्बन-

(शेष पृष्ठ ७३ पर)

दुख समेटकर

—शुकदेव प्रसाद

न्यूटन के पास एक प्यारा कुत्ता था—डायमण्ड । एक बार वे जलती बत्ती मेज पर छोड़कर कहीं घूमने चले गए । इस बीच न जाने क्यों, कुत्ता मेज पर झपटा और बत्ती के गिर जाने से सारा कागज जल गया । जब न्यूटन घूमकर वापस आए तो देखा कि उनकी वर्षों की मेहनत उनके सामने जलकर राख हो गई है ।

न्यूटन ने क्या किया ? अपने दुःख को समेटकर वह केवल इतना ही बोले—'डायमण्ड' तू क्या जाने, तूने मेरा कितना नुकसान कर दिया है ?'

वास्तव में न्यूटन अत्यन्त नम्र स्वभाव के थे । अपने समय के महान वैज्ञानिक थे लेकिन अपनी महानता के प्रति सदा उदासीन । उनका कहना था ।

'संसार मेरे अनुसंधान के बारे में कुछ भी कहे लेकिन मुझे प्रतीत होता है कि मैं समुद्र तट पर खेलने वाले उस बच्चे के समान हूँ जिसको कभी-कभी अपने साथियों की अपेक्षा कुछ अधिक सुन्दर पत्थर, सीप व शंख मिल जाते हैं । वास्तविकता तो यह है कि सत्य का अथाह समुद्र मेरे सामने अब भी बिन खोजा पड़ा है ।'

सूर का प्राणान्त

—डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर

सूर को जो गाना था, वह प्राय: गा चुके थे। फिर भी वह आते-जाते थे और वे किसी समय भी गा उठते थे। वास्तव में उनके पद सुनने के लिए दूर-दूर से व्यक्ति आते थे। अकवर तक उनके पद तानसेन से सुनकर मुग्ध थे। वे उन्हें सुनना चाहते थे। पर सूर भक्त थे। उनका राजदरवार में जाना हो नहीं सकता था।

अकवर मथुरा में उनसे भेंट करने का कार्यक्रम वनाकर चला। सूर को सूचना भी भिजवायी। पर सूर तव पारसौली में थे और कुछ दिनों तक विश्राम लेने के विचार से रुके थे। उन्होंने अत्यन्त आभार मानते हुए सन्देश को लौटा दिया। अकवर तव सर्व धर्म सम्मेलन के लिए प्रयत्नशील हो रहा था। उसे फतेहपुर सीकरी जाना था। पुन: मिलने का विचार लेकर वह आगे चल पड़ा।

सूर कभी-कभी रास विहारी के मन्दिर में जा वैठते थे। सौ वर्ष से अधिक की उनकी उम्र हो चली थी। शरीर शिथिल हो गया था। श्यामा यदाकदा आती-जाती रहती थी। विट्ठलाचार्य के गोवर्द्धन से वाहर जाने पर उनके सुपुत्र गिरिधर श्रीनाथ जी की मूर्ति मथुरा ले आये थे। उनके साथ सूर भी गये थे, परन्तु तुरन्त लौट आये थे। उनका मन नहीं लगा था।

आज उनके पास कोई नहीं था। अकेले थे। पुराना समय स्मरण हो रहा था। कभी कृष्ण का वाल रूप सामने आ जाता और कभी रास लीलाएं आकृष्ट करने लगती थीं।

विट्ठलाचार्य आदि वृन्दावन (गोवर्द्धन) लौट आये थे। जव जव विट्ठलाचार्य ने स्वयं श्रीनाथ जी का श्रृंगार-पूजन किया था तव-तव सूर ने पद गाकर सुनाया था।

इसे संयोग ही मानना चाहिए क्योंकि सूर श्रीनाथ जी के मन्दिर में उस समय जरूर उपस्थित रहे थे।

कल वह जरूर दर्शन करने जाएंगे। इस बार विट्ठलाचार्य बहुत दिनों बाद लौटे थे। उनका मन भी हो रहा था कि चलने से पूर्व उनसे जरूर भेंट की जाए। श्रीनाथ जी ने उनकी वह प्रार्थना स्वीकार कर लीं। कल वह सुबह भेंट करने जाएंगे। इस प्रकार के नानाविध विचारों में डूवते-तिरते वे सो गये।

सूर को अंतिम अवस्था का आभास हो चला था। आरम्भ से लेकर आज तक का जीवन उनके सामने घूम गया। उन्हें सारंगी की याद आने लगी। जाने वह कहां होगी? होगी भी या नहीं। फिर पुष्कराक्षी श्यामा के बारे में वह सोचने लगे। लगा जैसे आज तक वह उसकी आंखों से दुनिया देख रहे थे, जैसे आज वह उनसे अपनी आंखें मांग रही हो। उससे उनका सम्वन्ध क्या रहा है, यह वह आज भी तै नहीं कर पा रहे थे। चिदरूप विस्तृत खुले आकाश-सा स्पष्ट था। अन्तर में छपे श्रीनाथ जी की नीलांवुज-सी देह उनके सामने थी। नवोढ़ा जैसी राधिका पता नहीं कैसे श्यामा में उतर जाती थी। उसका हरा मन और सर-काक-सी गति-वुद्धि उनके हृदय पर लरज उठी थी। उसका सानुकम्प चित्त, साध्वी रूप, स्थविर मन और ह्लालादित वृत्ति सूर के मन पर गहरी छाप छोड़े थी। रास-वर्णन, राधिका-शृंगार वर्णन, गोपी-कृष्ण आदि वर्णनों की परिकल्पना के पीछे श्यामा ही थी।

सूर सुवह से जतीपुर जाने की सोच रहे थे, पर उनमें हिम्मत टूट रही थी। उनको अपनी ऐहिक लीला संकुचित होती प्रतीत हुई। क्या अन्त में विट्ठलाचार्य के दर्शन नहीं होंगे। विट्ठलाचार्य गोकुल चले गये थे। वहां उन्होंने नवनीत प्रिय जी के मन्दिर की स्थापना की थी। परन्तु जव तक वह श्रीनाथ जी के मन्दिर में चले जाते थे, उन्होंने ही श्रीनाथ जी का आज शृंगार किया था। मणिकोण में कीर्तन शुरू हो चुका था। विट्ठलाचार्य की दृष्टि उस समय सूरदास को ढूंढ़ रही थी। तभी सूरदास का उन्हें समाचार मिला कि वह आपको वुला रहे हैं।

विट्ठलाचार्य की समझ में आ गया कि सूरदास तिरोधान करने वाले हैं। उन्होंने कीर्तन रोकते हुए उपस्थित भक्तजनों से कहा—पुष्टि मार्ग जा जिहाज जात है,

जाको कछू लेने होय तो लेय लेउ और जो भगदिच्छा तें राजयोग आरती पीछें रहत हैं तो मैं हूं आवत हों। फिर क्या था भक्तजन उठ लिये। पारसौली पहुंच गये।

सूर खटिया पर से स्वयं उतरकर फर्श पर आ लेटे थे। फर्श पर कपड़ा विछा था। कुछ ही देर में पूजा समाप्त करके विट्ठलाचार्य वहां पहुंच गये। सूर के पास आकर वैठते ही बोले—सूर जी, आपके मन में क्या है ?

सूर लेटे-लेटे मन्द-मन्थर स्वर में गाने लगे—।"देखो-देखो हरिजू का एक सुभाव।" विट्ठलाचार्य प्रसन्नं हो उठे।

चतुर्भुजदास ने कहा—सूर जी, भगवत्-यश तो आजन्म गाया है, पर महाप्रभु का यश वर्णन नहीं किया।

सूरदास सहज स्वर में बोले—मेरे लिए दोनों ही एक समान हैं। मेरे लिए दोनों का यश-गान भिन्न नहीं है। अतः महाप्रभु का यश वर्णन अलग से गाने की आवश्यकता कहां ?

इसके वाद वह एक पद और सुना उठे—चित्त श्री ठाकुर जी को, श्रीमुख तामें करुणा रस के भरे नेत्र देखें—इसे गाते-गाते वह मूर्च्छित हो गये। विट्ठलाचार्य ने उनकी नब्ज थाम लीं।

इसी समय श्यामा का प्रवेश हुआ। वह एक कोने में खड़ी हो गई। उसका मन पश्चात्ताप से भर उठा। सूर ने उसे बुलाया था। वही विलम्ब से पहुंची। विट्ठलाचार्य सूर की नवज थामे थे। वह श्रीनाथ जी मनोती मन ही मन कर रही थी कि उसके सुकर्मों का यदि कोई फल वनता है तो प्रभु एक वार सूर के प्राण लौटा दो। वह उनसे क्षमा तो मांग लें।

तभी सूर में चैतन्य लौटा। भक्तगण हर्षित हो उठे। श्यामा के नेत्रों से आंसू ढुलक गये। उसने आंचल के छोर से आंसू पोंछ लिए।

विट्ठलाचार्य ने पूछा—सूर जी तिहारे नेत्रों की गति कहां है ?

सूर एकाएक गा उठे—"खंजन नैन रूप रस माते, चलि-चलि जात निकट श्रवनन के, पलटि-पलटि ताटंक फंदाते।"

विट्ठलाचार्य ने गंगाजल मांगा। श्यामा ने दौड़कर गंगाजल भरा पात्र उठाया

और विट्ठलाचार्य की ओर वढ़ा दिया। वह वोल उठी—सूरदास जी, गलती क्षमा।

आगे कुछ नहीं बोल सकी। भीगे नयनों से वाहर लौट हड़ी। सूरदास ने कहा—श्यामा—!

इसके वाद प्राण छोड़ दिये।

श्यामा प्रासाद में पागलों की तरह हा'''हा करती गिरती-पड़ती रही।

—सूरांत हो गया।—यह कहते हुए विट्ठलाचार्य उठ दिये और स्वचालित अन्यमनस्क भाव से एक ओर को चल दिए।

योग्यता

जीवन के संग्राम में योग्यतम की विजय होती है।
योग्यता मनुष्य को हासिल करनी पड़ती है।
योग्यता के बीज वचपन के संस्कारों में निहित हैं।
संस्कारों का निर्माण माता द्वारा होता है।
संस्कारों का पोषण पिता द्वारा होता है।
संस्कारों का विकास वालक करता है।
यही 'विकास' मनुष्य की योग्यता है।
'योग्यता' से जीवन का निर्माण होता है।
जीवन की सार्थकता योग्यता पूर्वक कर्म में है।

—मालती महावर

होनी क्या है?

—गणेश प्रसा

ईश्वर में आस्था रखने वाले अक्सर ये कहा करते हैं कि जो होनी में लिखा है वह होकर ही रहेगा। लेकिन यह होनी है क्या?

मेरे मस्तिष्क में बचपन से ही यह प्रश्न गूंज रहा था। उत्तर का कोई सूत्र नहीं मिल पा रहा था कि इस रहस्य को किस तरह से जाना जाये।

जब मैं संन्यास जीवन व्यतीत कर रहा था, तब मैं एक बार नीलकंठ महादेव के पास वाली एक गुफा में बैठा हुआ अपनी साधना में रत था कि एक महात्मा जी का साक्षात्कार हुआ।

मैंने कुशल-क्षेम पूछने के बाद कहा कि महाराज कहां से आगमन हुआ है उन्होंने बताया कि मैं मणीकोट पर्वत से आ रहा हूं।

उनसे मेरा कुछ समय तक सत्संग होता रहा। मुझे याद आया। मैं पूछ बैठा 'महाराज होनी किसे कहते हैं?'

कुछ समय तक वे मौन रहे फिर उन्होंने बताया कि होनी ने ही मुझे कहा कि एक मतवाला अमुक गुफा में बैठा हुआ है। उससे सत्संग करो। इसलिए मेरा तुम्हारा समागम हुआ।

मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए वे बोले—'होनी हमारे अंतर आत्मा की ही एक आवाज है जो अंतरंग में बनती है और पुनः कार्यक्षेत्र में बदल जाती है। यह जिस रूप में बनती है मानव का भविष्य भी वैसा ही रहता है। मस्तिष्क में एक ऐसा केन्द्र है, जहां अनेकों शब्द तरंगे लहराती रहती हैं, इस बिन्दु आलय को परा कहते हैं, फिर

सूक्ष्म तरंगें एकत्र हो होकर स्थूल शब्द की रचना करती है, जिसे पश्यन्ती कहते हैं, पुनः कई शब्द मिलकर बोलने का कोई वाक्य बनाते हैं जिसे मध्यमा कहते हैं। मध्यमा के द्वारा हम अपने अंतरंग में मनन, विचार या कोई ख्याल करते हैं। और बैखरी उसी शब्द को बाहर हमारे मुख द्वारा निकाल देती है। लेकिन अत्यन्त सूक्ष्म रूप में वाणी का निर्माण पहले ही हमारे चैतन्य आत्मा में हो जाता है इसी को होनी कहते हैं। यह होनी ही जब परा, पश्यन्ती और मध्यमा से होकर गुजरती है तो विकृत हो जाती है। इन चारों बातों से प्रथम जो शुद्ध शब्द तरंग है उसी को अभ्यास द्वारा पकड़ा जाये।'

मैंने पूछा—'महाराज ! इसको कैसे पकड़ा जाये ?'

उन्होंने बताया, इसका अभ्यास बहुत ही आसान है। जब पकड़ में आ जाती है तो स्वतः होनी को सुना जा सकता है। यदि साधना भी बंद हो जाए तो भी कुछ दिनों तक होनी भासती रहती है और बाहरी आवरण पड़ जाने पर अंत में बंद हो जाती है। इसकी साधना है, सर्व प्रथम ब्रह्म शब्द, प्रकृति का बाजा, पुकार अथवा अनाहत को सुने। अर्द्धरात्रि में जब सुनसान हो जाए और कोई दीपक की रोशनी न रहे तो अंगूठे के बगल वाली दोनों उंगलियों को दोनों कानों में इस तरह से ठूस लो कि बाहरी कोई आवाज न सुनाई पड़े और अन्दर की मद्धम से मद्धम आवाज ध्यान में लाओ। इस तरह एक मास तक नित्य एक घंटे से दो घंटों तक अभ्यास करते रहो फिर स्वतः होनी की आवाज आने लगेगी और तब उंगलियां लगाने की भी कोई आवश्यकता नहीं। दीर्घ अभ्यास हो जाने के बाद योगी इन आवाजों में वार्तालाप भी करने लगता है।

महात्मा जी की कृपा से मैंने अभ्यास शुरू किया। मुझे बीस ही दिनों में सफलता मिल गई। और तरह-तरह की वाणियां आने लगीं। मेरा वार्तालाप होनी से होने लगा और कभी-कभी मैं किसी बात पर हस्तक्षेप कर दिया करता था जिससे कि आने वाला वह भविष्य टल जाता।

कुछ दिन तक मेरे मस्तिष्क में एक अजीब सी गूंज बराबर होती रही, जिससे अन्य साधनों में विघ्न होने लगा। अंत में तंग आकर मैंने अभ्यास छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद होनी का आना भी बंद हो गया। होनी से होने वाली भविष्यवाणियां शत-प्रतिशत सही उतरती थीं।

यह मेरे संन्यास जीवन की एक घटना है। कोई भी इस अभ्यास के द्वारा होनी को जान सकता है।

मै तो सेनापति हूं

—असीम चक्रवर्ती

महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बोस के विचारों में एक गहरा अंतर था। बापू जहां शांत प्रकृति के थे और अहिंसा के पुजारी थे, वहां सुभाष एक धधकते ज्वालामुखी थे। पर इसके बावजूद दोनों का एक-दूसरे के प्रति बहुत स्नेह था।

एक बार की बात है। उस समय नेताजी सुभाष ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भी त्यागपत्र दे दिया था। उनके एक मित्र ने पूछा, "सुभाष जिस तरह से भारतीय अपने देश को गुलामी की जंजीर से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं, उससे एक बात स्पष्ट है कि भारत शीघ्र स्वतंत्र हो जायेगा। पर सवाल यह उठता है कि भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी बागडोर कौन संभालेगा?"

"मेरे ख्याल से महात्मा गांधी के अलावा किसी को भी देश की बागडोर संभालने का हक नहीं है। वे ही देश को ठीक ढंग से संभाल सकते हैं। जहां तक मेरा ख्याल है, मैं तो सिर्फ सेनापति हूं। और सेनापति की तरह इस देश की सुरक्षा करता रहूंगा।"

सुभाष की यह बात सुनकर मित्र महोदय अचम्भे में रह गये। उन्होंने यह प्रश्न विशेष रूप से सुभाष से इसलिए किया था कि वे यह पता करना चाहते थे कि क्या सुभाष को सत्ता पसन्द है। और अपने मित्र से यह उत्तर पाकर वे एक बार फिर उनके सामने नतमस्तक से हो गये।

प्रकाशित म॰ न
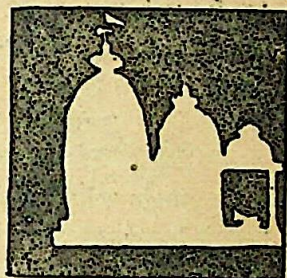
मगहर : कबीर का निर्वाण-स्थल

—जी० पी० मौर्य गौतम

मुख्यालय वस्ती (उ० प्र०) से गोरखपुर जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर बस्ती की सीमा पर एक ऐतिहासिक कस्वा मगहर स्थित है। कस्वे को देखकर लगता है कि जिस तरह से आज से ५०० वर्ष पूर्व महात्मा कबीर की वाणियों से उस समय के रूढ़िवादी अन्धविश्वासी, भाग्यवादी ढोंगी, पाखण्डी (जिनका समाज पर परोक्ष का आधिपत्य था) द्वेष रखते थे, उसी प्रकार वे उस महात्मा की समाधि-स्थली मगहर से लोगों ने द्वेष करना ठान लिया है।

सर्वप्रथम मगहर के प्रति कबीर की वाणी को देखा जाये कि जिस मगहर को आज से २५०० वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध ने 'मार्गहर' का नामकरण दिया था।

उस रास्ते से आने-जाने पर लोगों का हरण होता था, राहजनी होती थी, अराजक तत्वों का आतंक था, उसी रास्ते महात्मा बुद्ध का पदार्पण होने पर लोगों ने उक्त बात से उन्हें अवगत कराया। बुद्ध ने आतंककारी अंगुलीमाल के जीवन का मार्ग परिवर्तन करके चलने को कहा, तो उसका नाम 'मार्गहर' रख दिया। वही मार्ग ही आगे चल करके 'मगहर' हो गया, कारण कि मार्ग और मग का एक ही शब्दार्थ है।

वही मगहर जहां कृषि अयोग्य भूमि की वहुतायत है, ऊसर के रूप में विख्यात

रहा है, वहां मात्र दूर-दूर के धोबी और गदहे देशी सोडा, रेत लाने जाते थे। उसी भूमि को कृतार्थ और अमर करने के लिए काशी में जन्मे कबीर ने देहावसान के लिए इस भाव से चुना कि :

"क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम रिदै बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा, रामै कौन निहौरा॥"

अन्ततः कबीर ने वहीं प्राण त्याग किया। परन्तु जिस कबीर को, जीते में उस समय के हिन्दू मुसलमान उनके शव के लिए लड़ाई लड़े। अन्ततः उसी अनेकता का प्रमाण मन्दिर और मजार विकसित रूप में आज विद्यमान हैं। मंदिर पूरब में है इसी से सटी पश्चिम में मस्जिद है। मन्दिर के पूर्व में ऐतिहासिक नदी आमी है। मंदिर के दक्षिण में १०० गज की दूरी पर ब्रह्माचार्य जी का स्थान है जिसके पूर्व में सटा शिव मंदिर है, जो बिल्कुल ही आमी नदी के तट पर बना हुआ है जिसमें से नदी में सीढ़ियां गई हैं और जहां पुरुष-स्त्रियों के अलग-अलग स्नानागार हैं।

शिव मंदिर अति प्राचीन है। लगता है कि जिस तरह २१६६ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र शुंग ने योजनाबद्ध ढंग से, बुद्ध प्रतिमाओं को तोड़ करके शिवलिङ्गों में परिवर्तित करके अपना उद्देश्य पूरा किया, उस मंदिर से भी लगता है कि बुद्ध से ही सम्बन्धित रहा है। मगहर के ही आठ मील के इर्द-गिर्द दक्षिण-पश्चिम में तमेश्वरनाथ है जहां महात्मा बुद्ध ने केशों को कटवा करके संन्यासी रूप धारण किया था, वह स्थान मुंडन के लिए ही प्रसिद्ध है तथा मन्दिर भी अति प्राचीन है जिसमें बुद्ध की प्रतिमा के स्थान पर शिवलिङ्ग स्थापित किया गया है।

तमेश्वरनाथ का अति प्राचीन नाम बुद्धेश्वर नाथ ही रहा है जिसका नाम भी बदला गया। अतएव मगहर बुद्ध से सम्बन्धित रहा है, यह अतिशयोक्ति नहीं, सत्य लगता है।

आज किस प्रकार मगहर से द्वेष किया जा रहा है? पूर्व में राष्ट्रीय मार्ग मगहर से होकर जाता था, परन्तु बारह वर्ष पूर्व मगहर से आधा फर्लांग उत्तर से होकर एक नया मार्ग बन गया। अब आने जाने का यही मार्ग हो गया है। यह किसी अभि-

(शेष पृष्ठ ४१ पर)
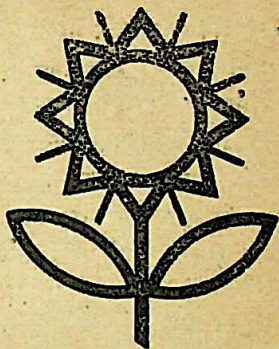
विचारों का उजाला

—रामकुमार

"कई बार मुझे एकाकीपन का भाव ठंडे कोहरे की तरह घेरने लगता है और जीवन के द्वार चारों ओर से बन्द महसूस होते हैं। बाहर की दुनिया में प्रकाश है, संगीत है और लोगों का साथ है। परन्तु इस संसार में मेरे लिए प्रविष्ट होना सम्भव नहीं, निर्मम और मौन भाग्य मेरे मार्ग को रोक रहा है। इस दुर्भाग्य के लिए ईश्वर की नियति पर प्रश्नचिन्ह लगाने के लिए जो शब्द होंटों तक आना चाहते हैं, उन्हें मेरी जिह्वा उच्चारित नहीं कर पा रही है। आंखों से ढलक जाने वाले आंसुओं की भांति ये शब्द पुनः हृदय में समा जाते हैं। एक गहन, उदास मौन ने मेरी आत्मा में वास कर रखा है।"

ये शब्द हैं—हेलेन केलर के, जिसने आंखों की ज्योति के बिना भी आत्मा की आंखों से उजाले के एहसास को जिया। हेलेन केलर का विचार है कि सुनने, देखने या बोलने की शक्ति नहीं होने पर भी आदमी अपने भीतर के उजाले और विचार-शक्ति से जीवन को नई गति, स्फूर्ति देकर अमर आनन्द की अनुभूति कर सकता है। विकलांग

होने पर एक प्रकार की ऐसी मानसिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे व्यक्ति अपने को अकेला असहाय और निर्बल समझने लगता है। उसके भीतर की शक्तियां और प्रतिभा कुण्ठित होने लगती है। यह स्थिति और भी भयावह हो जाती है—जब वह समाज से कटा हुआ अनुभव करने लगता है। समाज का व्यवहार उसके लिए और भी दुखदायी बनने लगता है—जब वह सोचता है कि समाज उसे दया की दृष्टि से देखता है। उसकी सहायता करते समय लोग यह सोचते हैं कि वे कुछ दान कर रहे हैं। जबकि मुख्य प्रश्न सहायता का नहीं बल्कि विकलांगों को उनके भीतर सोई शक्तियों का एहसास जगाने और उन्हें आत्मनिर्भर बनने में योग देने का है।

हेलेन केलर का इस सन्दर्भ में बार-बार नाम इसलिए उभरता है कि उसने समस्त विकलांगों की पीड़ा और दर्द को मुखर अभिव्यक्ति दी है। उनकी स्थिति को तीखेपन के साथ प्रस्तुत करते हुए हेलेन केलर का विचार है :

"विज्ञान ने भले ही अधिकतर रोगों का निदान ढूंढ लिया हो परन्तु सबसे भयानक रोग—"मनुष्य की उपेक्षा"—की औषधि अभी तक उसने नहीं ढूंढ़ी है।"

दुनिया में लगभग चालीस करोड़ लोग शारीरिक या मानसिक रूप से अपंग हैं। भारत में विकलांगों की उपेक्षित जिन्दगी बसर करने वालों की संख्या दो करोड़ आंकी जाती है। इन विकलांगों के लिए जिस स्वस्थ सामाजिक पर्यावरण की आवश्यकता है—उसका अभाव है। लाचारी और विवशता के बीच कशमकश की जिन्दगी जीने वालों के प्रति शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ एवं सबल हर व्यक्ति का एक दायित्व है। यह दायित्व है—विकलांगों के पुनर्वास की व्यवस्था में योग देने का।

जो लोग अपंग या विकलांग होते हुए भी कुछ न कुछ काम करने के योग्य हैं —उनके लिए उचित काम के अवसर पैदा करने से विकलांगों को अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य की अनुभूति मिलेगी। गहरी काली रात के घने अंधेरे में दीपक की छोटी-सी लौ प्रकाश बिखेरने लगती है और घने-अंधेरे की जकड़ को चीरने लगती है—ठीक एक ऐसी ही लौ विकलांगों के मन में जलाने और उन्हें उनकी क्षमता, योग्यता और प्रतिभा को उज्ज्वल एहसास सौंपने की आवश्यकता है।

दुनिया के इतिहास में ऐसे अनेक नाम हैं जिन्होंने विकलांग जीवन की चुनौ-

तियों के समक्ष कभी घुटने नही टेके । वल्कि वे समाज के सामने प्रेरक-प्रसंगों के रूप में विख्यात हुए, किन्तु जिस चुनौती को फ्रेन्कलीन रुजवेल्ट, सूरदास, हेलेन केलर, जॉन मिल्टन, हॉमर आदि विश्वविख्यात लोगों ने स्वीकार कर अद्भुत क्षमता का परिचय दिया, वैसा ही करना सर्वसाधारण के लिए अपेक्षित नहीं हो सकता। परन्तु योजनावद्ध प्रयासों का अलग महत्व है।

विचारों के उजाले में वहुत कुछ परिवर्तन लाया जा सकता है। हेलेन केलर के शब्दों में—**आशा और विश्वास का जीवन में गहरा योग होता है**—"विकलांग जिन्दगी की विवशता के वीच आशा और विश्वास का हल्का सा उजाला मेरे भीतर फुसफुसाता है—स्वयं को भूल जाने में आनन्द है। इसलिए दूसरों की आंखों के उजाले में अपना सूर्य वनाने का प्रयास करती हूं। दूसरों के कानों के संगीत को अपने मन के तारों से स्पन्दित होने वाला स्वर वनाती हूं और दूसरों के होठों की मुस्कान में हर्ष की अनुभूति करती हूं !'

(पृष्ठ ३८ का शेष)

यन्ता की बुद्धिमति ही रही होगी जिससे उस अमरस्थली से आने-जाने के लिए रुकने की आवश्यकता नहीं समझी।

मगहर में एक इन्टर कालेज भी कवीर के नाम पर है, एक कताई मिल है, गांधी आश्रम का पूर्वांचल का सवसे बड़ा भण्डार है। कवीर की निर्वाण-स्थली पर अव एक सरकारी नलकूप पार्क इत्यादि की व्यवस्था हो गई है, परन्तु आवागमन के साधनों के लिए सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के वहुत लड़ाई लड़ने के वाद वस्ती से मगहर तक एक लोकल वस की व्यवस्था हो पाई है। रेलवे स्टेशन होने के नाते दिन में दो वार शटल गाड़ियां आती-जाती हैं।

मगहर को राष्ट्रीय मार्ग से जोड़ने के लिए राष्ट्रीय मार्ग से आश्रम तक पक्की सड़क वनवाकर वहीं मेल बसों के ठहराव की व्यवस्था होनी चाहिए, साथ ही एक डाक वंगला, कवीर साहित्य का पुस्तकालय भी होना नितांत आवश्यक है।

दुःख और उसका निरोध

—प्रेमसिंह जीना 'प्रेम'

इस संसार में प्राणी अनादि काल से चक्कर काटता चला आ रहा है। कभी वह मनुष्य होकर इस संसार में जन्म लेता है; तो कभी भूत-प्रेत होकर। वह लाखों वर्षों तक जीवित रहने वाला देव होकर भी जन्म लेता है और एक क्षण में मर जाने वाला कीट होकर भी। एक क्षण उसे देव लोक के समान सुख की प्राप्ति होती है तो दूसरे क्षण सुख के नष्ट होने से उसे दुःख होता है।

संसार की सारी वस्तुएं भी क्षणभंगुर हैं। हमें कोई वस्तु एक पल में अच्छी लगती है, दूसरे पल उसके नष्ट हो जाने से हमें दुःख होता है। सामान्यतः हमें जितनी अधिक वस्तुओं से लगाव होता है उतना ही दुःख हमें उनके नष्ट हो जाने से होता है।

उदाहरणार्थ एक मनुष्य का यदि लगाव एक हजार वस्तुओं से है तो दुःख भी उनके नष्ट होने पर एक हजार होंगे। यदि लगाव एक सौ से होगा तो दुःख भी एक सौ ही होंगे। इस प्रकार दुःख वस्तुओं की क्षणभंगुरता से होता है। जैसे—एक व्यक्ति विद्युत के प्रकाश में पढ़ रहा है। अचानक कोई दूसरा व्यक्ति विद्युत को बन्द करता है तो प्रकाश में पढ़ने वाले व्यक्ति को विद्युत के अचानक चले जाने से दुःख होगा। क्योंकि विद्युत प्रकाश की वजह से व्यक्ति पढ़ रहा था। इस तरह एक क्षण के लिए पढ़ने वाले व्यक्ति का विद्युत प्रकाश से लगाव रहा। इसी तरह प्राणी का अस्थिर जीवन प्रवाह का क्षण-क्षण अपना रूप परिवर्तित करता रहता है। इस प्रवाह से आशक्त होकर क्षण-क्षण दुःख अनुभव होता है। क्षणभंगुरता और उससे उत्पन्न होने वाली यह धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है और तब तक इसकी धारा

अटूट वनी रहती है जब तक वह 'चार आर्यसत्यी' ज्ञान समुद्र तक नहीं पहुंच जाय।

तथागत ने चार आर्यसत्यों की महिमा को बताते हुए कहा था।[1]

"भिक्षुओ; चार आर्यसत्य को नहीं जानने के कारण मेरा तथा तुम्हारा चिर-काल तक संसार में घूमना लगा रहा। हम लोग चार आर्यसत्यों को ठीक से नहीं देखने के कारण आज तक चक्कर काटते फिरे; किन्तु अब उसे हम लोगों ने देख लिया; अब तृष्णा नष्ट हो गई। दुःख का मूल कट गया। फिर जन्म लेना नहीं है।" चार आर्यसत्यों को विना जाने-देखे दुःख से छुटकारा पाना सम्भव नहीं।

'आर्य'[2] शब्द का अर्थ पालि भाषा में 'श्रेष्ठ' या 'उदात्त' है। किसी जाति विशेष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। चार सत्यों की श्रेष्ठता या सर्वोच्चता के कारण इन्हें 'आर्य सत्य' कहा गया है। साधारण मनुष्य दुःख को न जान सकते है, न देख सकते हैं। उन्हें विश्वास नहीं होता कि दुःख है और वह सत्य भी है।

दुःख को देखना साधारण कार्य नहीं है, यह एक कठिन कार्य है। लोभ, मोह और द्वेष से लिप्त मनुष्य इसे नहीं जान सकते। (ज्ञानीजन) ही दुःख को जानने में, देखने में सक्षम हैं, वे दुःख को सत्य समझते हैं। ये ही दूसरे शब्दों में आर्य हैं। चूंकि ये चार सत्यों की श्रेष्ठता जानते हैं अतः इसी आधार में चार सत्यों के प्रारम्भ में आर्य शब्द जोड़ दिया गया।

सरल शब्दों में, यदि एक बाल का टुकड़ा हाथ में पड़ता है तो हाथ को उस बाल के आ जाने पर उसकी अनुभूति नहीं होती। यदि यही बाल का एक टुकड़ा आंख में पड़ता है तो आंख को तुरन्त बाल के आ जाने पर उसकी अनुभूति होती है। यहां पर आंख आर्य के समान तथा हाथ साधारण मनुष्य के समान है। दुःख सत्य चार हैं जो इस प्रकार हैं—

१. दुःख आर्य सत्य।

---

१. बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धान्त, डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित, (ममता प्रकाशन, वाराणसी, उ० प्र०) पृष्ठ ३२.

२. आदि बौद्ध दर्शन अनात्मवादी परिपेक्ष्य, प्रताप चन्द्र (नई दिल्ली), पृष्ठ २०.

२. दुःख समुदय आर्य सत्य।
३. दुःख निरोध आर्य सत्य।
४. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य।

प्रथम दुःख आर्य सत्य, जिसके लिए पालि में 'दुक्ख अरियसच्च' (दुःख के स्वरूप का निरूपण करना) आया है।[1] फ्रेंच विद्वान एतिएन लोमोत के अनुसार—'दुःख मानसिक या भौतिक प्रतारणा का परिणाम नहीं है। वह संस्कारों में अनिवार्य रूप से निहित हैं। अर्थात् सारी भौतिक और मानसिक घटनाएं अनिवार्य रूप से दुःखमय हैं क्योंकि ऐसा उनका स्वभाव है।

"जन्म, जरा-मरण, रोग, पुनर्भव, प्रिय को प्राप्त न कर पाना, अप्रिय से छूट न पाना—ये सब दुःख हैं। विश्व में जो कुछ भी है। 'वयधम्मा' तथा 'खयधम्मा' है—उसका स्वभाव ही क्षय होना है।"[2]

द्वितीय दुःख समुदय आर्य सत्य जिसे पालि में 'दुक्ख-समुदय अरियसच्च' कहा है विश्व में होने वाली छोटी अथवा बड़ी घटना के पीछे कारण अवश्य होता है। इसी प्रकार दुःख हेतु क्या हैं? वह है भोग की तृष्णा, भव की तृष्णा, विभव की तृष्णा, इन्द्रियों के विलय या काम, इन्द्रियों के विषयों के साथ सम्पर्क, चिन्तन तृष्णा को पैदा करता है। काम के लिए राजा भी राजाओं से लड़ते हैं। पुत्र पिता से, मित्र मित्र से लड़ते हैं।

तृतीय दुःख आर्य सत्य 'दुःख निरोध' है—तृष्णा के अत्यन्त निरोध, परित्याग, विनाश को दुःख निरोध आर्य सत्य कहते हैं। प्रिय विषयों और तद्विषयक विचारों, विकल्पों से जब तृष्णा छूट जाती है, तभी तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के नाश होने पर उपादान विषयों के संग्रह करने का निरोध हो जाता है। उपादान के निरोध से भव का निरोध होता है। भव निरोध से जन्म (पुर्नजन्म) का निरोध होता

---

१. इस्त्वा दु बुद्धिज्म इंदिये (फ्रेंच) (लूवैं, १९५८) पृष्ठ २९.
२. आदि बौद्ध दर्शन, अनात्मवादी परिपेक्ष्य प्रताप चन्द्र (नई दिल्ली) १९७८, पृष्ठ २०-२१.

है। जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मरण, शोक, दुःख मन की खिन्नता, नष्ट हो जाती है। इस प्रकार दुःख का निरोध होता है।

चौथा आर्यसत्य दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा है। दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आष्टांगिक मार्ग है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्हायाा, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।

इन चार आर्य सत्यों का यही क्रम आवश्यक है। यह क्रम आगे अथवा पीछे नहीं किया जा सकता। कर्न ने भी चिकित्सा विज्ञान में इसी प्रकार के चार आधार को सत्य माना है। जो चार आर्य सत्यों के तुल्यरूप हैं—"रोग, रोगहेतुर, अरोग्मय तथा मैंपज्यम, रोग का इलाज उसी अवस्था में सम्भव है जब उसका कारण ज्ञात हो, कारण के उन्मूलन में विश्वास हो तथा उन्मूलन की विधि का ज्ञान हो।"[1]

●

अंग्रेजी के प्रसिद्ध रोमान्टिक कवि लार्ड वायरन पैर की रोगग्रस्त हड्डियों के कारण लंगड़ाकर चलते थे। अपनी अद्वितीय लोकप्रियता के वावजूद उन्हें हमेशा लंगड़ेपन का एहसास वना रहता।

एक वार वे अपने वगीचे में टहल रहे थे। तभी हावहाउस उनसे मिलने आए। उन्हें वाहर टहलता देखकर वे दूर खड़ें रहकर उनका टहलना देखने लगे! वायरन ने उन्हें अपनी ओर इस तरह देखते हुए पाया तो तिल-मिला उठे और वोले, 'मुझे अच्छी तरह मालूम है, आप वहां पर खड़े होकर मेरा लंगड़ाना देख रहे हैं और मन ही मन प्रसन्न हो रहे हैं।'

हाव हाउस वायरन के इस वाक्य से घवड़ा उठे और व्रड़ी मृदुता से वोले, 'महाशय आप जैसे दिमागदार आदमी के सिर के वजाय कौन बेवकूफ पैरों पर नजर जमाएगा।'

—दिनेश श्रीवास्तव

●

---

१. कर्न मैनुअल आफ बुद्धिज्म—(स्ट्रासबर्ग, १८९६) पृष्ठ ४८
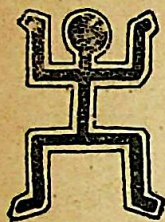
सत्ता का नशा

—प्रो० रामकिशोर पशीने

सत्ता का अर्थ है कि कुछ अधिकार आपके हाथों में हों, जिनके द्वारा आप दूसरों का हित-अनहित कर सकें।

संस्कृत के मूल शब्द 'सत्' से यदि इसका उद्‌गम मानें तो इसका अर्थ 'अच्छा-पन' हो सकता, अर्थात् सत्ताधारी व्यक्ति सदा अच्छा ही होता है। यदि किसी के हाथों में सत्ता है, तो उसे अच्छा बनना होगा, ताकि वह न्याय कर सके, गरीबों को राहत दे सके और अधिक लोगों का हित कर सके। समाज में ऐसा वातावरण लाने के लिए आध्यात्मिक विचारों के प्रचार की आवश्यकता है।

जिसके हाथों में सत्ता आ जाती है, उसके प्रति लोगों का व्यवहार बदल जाता है। **'सर्वे गुणा: कांचनमाश्रयन्ति'** के अनुसार लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। सत्कार और भेंट पूजापान से उसे फुरसत नहीं मिलती है। शीघ्र ही वह अपने को विशेष व्यक्ति समझने लगता है और धीरे-धीरे उस पर सत्ता का नशा चढ़ने लगता है, तब वह किसी को कुछ नहीं समझता और मनमानी करने पर उतारू होता है। कम उम्र में यह नशा अधिक चढ़ता है। वर्तमान राजनीति में भी हम इसके उदाहरण पा सकते हैं।

लोकतन्त्र में सत्ताधारी व्यक्ति के आचरण के लिए कई नियम बनाये जाते हैं, ताकि वह अपने अधिकारों का सही उपयोग करे। इसके बावजूद उसे मनमानी करने

(शेष पृष्ठ ५३ पर)

अपने आपमें रमण करें

—डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

योगसाधना के क्षेत्र में 'आत्माराम' और 'आत्मरति' शब्द बहु प्रचलित हैं। निर्विकल्प समाधि की स्थिति को प्राप्त योगी को ही 'आत्माराम' कहा गया है। 'आत्माराम' का अर्थ है—ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील या आत्मज्ञान का अन्वेषक। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ होगा—अपनी आत्मा में ही व्यापक रूप से जो रमण करता है, या 'आत्मानन्द' में मग्न रहता है, वही 'आत्माराम' कहलाता है। 'शिवमहिम्न स्तोत्र' में शिव को और 'श्रीमदभागवत' में कृष्ण को 'आत्माराम' शब्द से विशेषित किया गया है। 'आत्माराम' होने के कारण ही इन्हें 'योगेश्वर' या 'महायोगेश्वर' कहा गया है।

जो आत्माराम बनेगा, वही आत्मानन्द का भोक्ता होगा। भोग में योग की या सम्भोग में समाधि की यह स्थिति, निश्चय ही, भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर या अविद्या से विद्याभूमि की ओर प्रस्थान है, जो गहन साधना का विषय है। इसके लिए आत्मज्ञ होना अपेक्षित है। आत्मज्ञता की स्थिति निर्विकल्प समाधि की स्थिति में ही प्राप्य सम्भव है। **निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब साधक अपने को ज्ञान से मुक्त कर ले,** जिसे थियोसॉफी के प्रसिद्ध चिन्तक जे० कृष्णमूर्त्ति ने

'फ्रीडम फॉम दि नोन' कहा है।

आत्माराम वनने का अर्थ है आत्मज्ञानी होना। आत्मज्ञान ही आत्मरति या आत्मप्रेम है। आत्मज्ञान के संबंध में भारतीय शास्त्र निरन्तर मुखर रहा है। वेद ने कहा : 'आत्मानं विद्धि' तो गीता में भगवान् कृष्ण ने 'उद्घोषणा की:' आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः' इसी प्रकार 'भगवान बुद्ध' ने कहा कि 'अत्ता हि अत्तनो नाथो' (धम्मपद), तो भगवान् महावीर ने वताया कि 'अप्पोदंतो सुही होइ' (उत्तराध्ययन सूत्र)। इससे स्पष्ट है कि सुखी जीवन के लिए आत्मज्ञान और आत्मनियन्त्रण दोनों आवश्यक हैं। एक आत्मा में ही समग्र विश्वात्मा की व्यापकता निहित है। अतएव, जो आत्मा को नहीं जानेगा, वह विश्वात्मा को नहीं समझ सकेगा।

विश्वात्मा के ज्ञान के लिए आत्मज्ञान अनिवार्य है। यहां तक कि आत्मसाधना का संबंध ईश्वर-साधना से जुड़ा हुआ है। इसीलिए, भारतीय दार्शनिकों ने आत्म-साक्षात्कार को ही ईश्वर-साक्षात्कार कहा है। आत्मप्रेम विश्वप्रेम का ही अनुकल्प है, जिसमें 'सर्वभूतेषु आत्मवत्' की व्यापक प्रेमभावना निहित है।

जो आत्माराम या अपने-आपमें रमण करने वाला होता है, वही 'परदारेषु मातृवत्' और 'परद्रव्यषुलोष्ठवत्' की भावना से सम्पन्न होता है। मातृभाव की उपासना और अपरिग्रह-भाव की चेतना के अभ्युदय की मूल अवधारणा आत्मप्रेम या आत्मतोष की भावना के जागरण से ही अनुवद्ध है। आत्मतुष्टि या आत्मरति के विना ज्ञात से मुक्ति संभव नहीं है।

जीवन में आत्मरति या आत्मसाधना न केवल आध्यात्मिक स्तर पर, अपितु भौतिक स्तर पर भी अनिवार्य है। क्योंकि, विना भौतिक सिद्धि के आध्यात्मिक सिद्धि दुष्प्राप्य होती है। समाज में यौन उच्छृंखलता या कामवासना की निरंकुशता आत्मप्रेम के अभाव में ही फैलती है। भगवान् महावीर ने सामाजिक प्रतिमानों के वदलते परिवेश को ध्यान में रखकर ही आत्मरति का पुनर्मूल्यांकन किया था और अपनी पत्नी में ही सन्तोष करने के व्रत को 'ब्रह्मचर्य' की संज्ञा दी थी। यदि आत्मरति को योग की अपेक्षा भोग की, अर्थात् पति-पत्नी के दाम्पत्य-जीवन की सीमा के भीतर रखकर देखा जाये, तो भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से आधुनिक समाज की

यौन निरंकुशता बहुत हद तक नियंत्रित हो सकती है।

आचार्य शिवपूजन सहाय कहा करते थे कि 'दाम्पत्य-जीवन को स्वीकार करना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी की एकनिष्ठता या एकात्मता। पति-पत्नी को एक-दूसरे की साधना करनी पड़ती है। पति-पत्नी की पारस्परिक अद्वैतता की साधना तभी सिद्ध होती है, जब पति को अपनी पत्नी संसार की सभी स्त्रियों से उत्कृष्ट प्रतीत हो या पत्नी को अपना पति विश्व के सभी पुरुषों में असाधारण दिखाई पड़े। तभी, वे अपने गृहस्थाश्रम को सफल बना सकते हैं।' इससे स्पष्ट है कि सफल एकनिष्ठ दाम्पत्य जीवन के लिए आत्मारामता या आत्मरति की साधना अपेक्षित है।

आत्मरति या आत्मारामता, अपनी मर्यादा में सीमित रहने की भावना के साधनामूलक विकास को संकेतित करती है। इस साधना में 'मैं कौन हूं?' इसी का अन्वेषण होता है। यही अन्वेषण-कार्य व्यापक स्तर पर 'एकोऽहं द्वितीयोनस्ति' की भावना से जुड़ जाता है। और, जब समस्त जीव या, विश्व को आत्मवत् देखने की दृष्टि मिल जाती है, आत्मप्रेम विश्वप्रेम में परिणत हो जाता है। इस प्रकार, जब विश्व का प्रत्येक मनुष्य उदारचरित बनकर आत्मप्रेम या आत्ममर्यादा को विश्वप्रेम या विश्व-मर्यादा मानकर उसके पालन में सहज सचेष्ट हो जाएगा, तब उसके लिए सम्पूर्ण संसार आत्मवत् हो जाएगा। उसके मन से 'अयं निजः परोवा' की संकीर्णता लुप्त हो जायेगी और वह बहिरन्तः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना से भर उठेगा। उसका अन्तःकरण वैसी उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित हो जाएगा, जहां उसे कैवल्य या स्वात्मत्वमात्र का बोध होगा, वह केवल ज्ञानी बन जायेगा और इसी एकमात्रता-बोध की स्थिति में उसे अपने-आपमें रमण करने की, आत्मरति की क्षमता प्राप्त हो जायेगी।

इसलिए, अपेक्षा इस बात की है कि हम आत्माराम बनने की; अपने-आपमें रमण करने की शक्ति प्राप्त करें। पर-रति से विमुख हुए बिना आत्मरति या आत्मानन्द की ओर उन्मुखता सम्भव नहीं है। आज हम आत्मरति या आत्मानन्द की उपेक्षा कर पर-रति या परानन्द के आकांक्षी हो गये हैं, इसीलिए अशांत या उत्तेजनापूर्ण या रागद्वेषदग्ध जीवन जीते हैं और इस प्रकार नाहक अपनी आयु का क्षय करते हैं। शांत और अनुद्विग्न दीर्घ जीवन जीने के लिए आत्मसाधना की आवश्यकता है, ताकि हम आत्माराम बनें, अपने-आपमें रमण करें।

सर्वव्यापी शिव

—श्याम मनोहर व्यास

शिव अनादि देव हैं। आदिकाल से शिवोपासना प्रचालित है। शिव वैसे अनार्यों के देवता माने गये हैं पर कालान्तर में वे आर्यों के भी आराध्य वन गये। वैदिक ग्रंथों में शिव का 'रूद्र' के रूप में उल्लेख हुआ है। व्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों हिन्दुओं के लोकप्रिय आराध्य देवता रहे हैं।

सत्-चित्-आनन्द स्वरूप व्रह्म एक है । वह पूर्ण एवं प्रकाशमय है। वह दिक एवं काल से भी परे है। वह अजर अमर एवं निराकार है।

शिवपुराण में इसी ब्रह्म स्वरूप शक्ति को शिव कहा गया है शिवपुराण की वायवीय संहिता के पूर्वखंड में स्वयं विष्णु ने शिव के वारे में कहा है :—

"सृष्टि के शुरू में शिव ही विद्यमान रहते हैं। वे ही इस चराचर सृष्टि की रचना करते हैं और इसका संहार भी वे ही करते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएं हैं और सब ओर चरण हैं। इनके शरीर की कान्ति सूर्य के समान है। वे भु अज्ञान के अन्धकार से परे विराजमान हैं। इन परमात्मा शिव से परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है! वे परमाणु से भी सूक्ष्म और आकाश से भी महान हैं! सभी प्राणियों में शिव निवास करते हैं।"

भगवान् शिव को तीनों कालों से परे, निराकार, सर्वज्ञ एवं गुणातीत माना गया है।

वायु पुराण में लिखा है :—

एक वार देवता लोग महाकैलास में गये। उन्होंने भगवान शिव से पूछा—"आप कौन हैं?" भगवान शिव वोले—"मैं एक हूं। मैं सृष्टि के पूर्व में था, इस समय हूं और भविष्य में रहूंगा। मैं तीनों गुणों से परे हूं।"

कूर्म पुराण में भगवान शिव को सवका निमित्त एवं सनातन पुरुष माना गया है।

104

श्वेताश्वतर उपानिषद् में लिखा है :—

"सृष्टि के आदिकाल में जव केवल अंधकार ही अंधकार था, न दिन था न रात्रि थी, न कारण था न कार्य था, केवल एक विकार रहित शिव ही मौजूद थे। वही अक्षर है, वही परमेश्वर है। उन्हीं से सब कुछ उत्पन्न हुआ।"

स्कन्द पुराण में कहा गया है :—

तू केवल एक रुद्र ही तो है, दूसरा कोई नहीं।

शिव की उत्पत्ति के वारे में अलग-अलग कथायें हैं। इन्हें सृष्टि में अजन्मा माना जाता है। एक विराट् स्वरूप शक्ति के दक्षिण भाग से ब्रह्मा का, वाम भाग से विष्णु का और हृदय से रुद्र का प्रकट होना वताया गया है।

रुद्र को संहारक माना गया है। सृष्टि का लोप शिव में ही होता है। शिव शक्ति के प्रतीक हैं। शिव में 'ई' की मात्रा निकल जाने पर शव बच जाता है जो जड़ है, इसी प्रकार सृष्टि में से शिव अर्थात् चेतन के लोप होने पर केवल जड़ वचता है जो निष्क्रिय है। इस कारण शिव सर्व कारण और सर्व देवमय हैं। वे तत्वज्ञ एवं काल से परे हैं।

यजुर्वद के सोलहवें अध्याय में रुद्र महिमा का वर्णन है।

महाभारत में श्रीकृष्ण ने शिव के वारे में वताया :—

युगे-युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः।

(महा० अनु० १४-१३)

स्कन्दपुराण में भगवान आशुतोष को सुषुप्ति-स्थान के नाथ कहकर महान वताया गया है :—

सुषुप्तिस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः।

पद्मपुराण में वर्णित शिव गीता रुद्रोपसना का अति विशद् ग्रंथ रत्न है।

ऋक्, यजुः और अथर्व वेद में शिव के ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, कपर्दी, शित कंठ, सर्वज्ञ, सर्वभूतेश आदि नाम बताये गये हैं।

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में शिव के नाम, काम, प्रभाव और स्वरूप आदि का वर्णन है।

अथर्ववेद में शिव को सहस्रयक्षु, तिग्मायुध, व्रजायुध और नीलकंठ आदि कहा गया है।

पुराणों में एकादश रुद्र माने गये हैं। शिव को त्र्यम्बक, त्रिलोचन, आशुतोष, उमापति, त्रिपुरारि, कृतिवास, तांडवनर्तक, पंचवक्त्रय, अष्टमूर्ति, पशुपति, वृषभध्वज, व्याघ्रकृति एवं शंकर आदि कहा गया है।

रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव आदि संस्कृत के ग्रंथों में भी शिव के लोकोत्तर गुणों का विशद् वर्णन हुआ है।

ऋग्वेद में लिंगोपासना की चर्चा की गई है।

शंकर का शाब्दिक अर्थ है :—'शं और 'कर'। 'शं' आनंद को कहते हैं और 'कर' से करने वाला, अतः जो आनंद प्रदान करे वही शंकर है, आराधना करने से जो शीघ्र प्रसन्न हो जाये वह आशुतोष है।

शुक्लयजुर्वेद संहिता में लिखा है :—

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। (मंत्र ५४)

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भी शिवोपासना की झलक मिलती है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा के अवशेषों में शिव की मूर्तियां मिली हैं।

भारत में द्वादश ज्योतिर्लिंग प्रमुख शैव तीर्थ हैं। लाखों की संख्या में शिव मन्दिर हमारे देश में विद्यमान हैं। विदेशों में भी शैव मन्दिर मिलते हैं। अमेरिका महाद्वीप में पेरुविया स्थान में प्राचीन शिव मूर्तियां मिली हैं।

कम्बोडिया में ग्यारहवीं शताब्दी में बना विशाल बान्तेयी शिव मन्दिर विद्यमान है।

कर्नल टाड का कथन है कि अरब के निवासी पैगम्बर मुहम्मद के पूर्व शिव के उपासक थे। वहां मक्केश्वर लिंग काले पत्थर का था। इसे मुसलमान असवद कहते थे। पहले यहूदी और इजराइली भी इसकी पूजा किया करते थे।

प्राचीन काल में रोम और यूनान में प्रियपस और फल्लुस नाम के शिव लिंगों की पूजा होती थीं।

प्राचीन मिस्र में हर और ईशिः की उपासना की जाती थी।

प्रकाशित

मिस्र के प्लुतार्क के लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय मिश्र में प्रचलित लिंग पूजा सारे पश्चिम में प्रचलित थी । प्राचीन काल में चीन और जापान में भी लिंग पूजा प्रचलित थी । जावा-सुमात्रा द्वीप समूह में भी शैवमत प्रचलित था । लोनों जोग्रंज का शिव मन्दिर विश्व विख्यात है ।

आज से दस हजार वर्ष पूर्व दक्षिण अमेरिका के पीरू देश में मय सभ्यता थी । वहां के निवासी पहाड़ के ऊपर वन में लिंग व वैल की मूर्तियां स्थापित करते थे ।

मिस्र के ओसिरिस के लिंग के सामने भी वैल रहता था ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार लिंग ऊर्जा का प्रतीक है । यदि परमाणु के तीनों विखंडित भागों को त्रिवेद मानते हैं तो इलेक्ट्रान के रूप में शिव ऋणात्मक शक्ति के प्रतीक हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि संसार की प्राचीन जातियां प्रकृति की पूजा के रूप में कालजयी शिवोपासना आदिकाल से करती आयी हैं ।

(पृष्ठ ४६ का शेष)

के कई अवसर मिल जाते हैं । दुर्भाग्य की बात है कि आजकल सर्वत्र चरित्र का पतन हुआ है, और सत्ताधारी व्यक्ति भ्रष्टाचार करके भविष्य के लिए धन-सम्पत्ति जुटा लेना चाहता है । बहुत कम मामलों में ऐसे व्यक्तियों की जांच होती है कि उन्होंने किस प्रकार इतना धन प्राप्त किया ।

जब चोटी के नेता और सत्ताधारी लोग ही स्वच्छ आचरण नहीं रखते हैं, तब उनके मातहत काम करने वाले अफसरों और कर्मचारियों से कैसे आशा की जा सकती है, कि वे नेक बने रहेंगे ? सच तो यह है, कि सच्चाई पर चलने वाले व्यक्ति को इन भ्रष्टाचारी लोगों के बीच काम करना असम्भव हो जाता है । यह बुराई पत्रकारिता, शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा और न्यायपालिका जैसी स्वच्छ समझी जाने वाली संस्थाओं में भी आ गई है, जिससे देश पतन की ओर जा रहा है ।

कोपनहैगन में तीन दिन ।।१।।

—दयानन्द

एक रात डचों के उन्नत नगर एमस्टरडैम में रुक कर अगली सुवह कोपनहैगन पहुंचे तो डच पनीर का मजा जबान पर बसा था।

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कोपनहैगन के सिटी टर्मिनस पर सरदार शमशेरसिंह मौजूद थे। ऊंचे सुर का प्रयोग करते हुए उन्होंने हमारा पुरतपाक स्वागत किया। हमारे अटैची केस अपने हाथों में ले लिए। इस तरह विना किसी भूमिका के हम उनके अतिथि बन गये।

शमशेर जी के पीछे-पीछे चलते हुए सरोज और मैं टर्मिनस से बाहर आ गये। सामने टाउन हाल था। उसके साथ ही वस स्टैण्ड था। वहां कई वसें थीं। शमशेर जी ने एक वस के माथे पर लिखा नम्वर पढ़ा और अटैची केस उसमें रख दिए। हमें पहले सवार कराकर, खुद सवार हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने वस के गेट में लगी मशीन में कुछ सिक्के डाले और तीन टिकट निकाल कर ड्राईवर को थमा दिया।

वस के अन्दर एक ओर सामान रखने के लिए वड़े-वड़े शैल्फ वने थे ताकि सवारियों को सामान की वजह से और सामान को सवारियों की वजह से कोई तकलीफ न हो।

आधे घण्टे की वस यात्रा के वाद हम शमशेर जी के घर पहुंचे। एक साधारण-सी विल्डिंग की पहली मंजिल पर दो कमरों के एक फ्लैट में सरदार जी ने अपना घर वसा रखा था। जिस कमरे में हमें बैठाया गया था, उसका ड्राइंग रूम के तौर पर प्रयोग किया जा रहा था। फर्श पर दरी से हल्का साधारण-सा कारपैट, कोने में एक अलमारी और अलमारी पर एक टेलीविजन सैट रखा हुआ था। इसके अतिरिक्त एक सामान्य-सा सोफा सेट, दो तिपाइयां, एक मेज, जो सम्भवतः डाईनिंग टेवल के तौर पर काम में आती होगी, इसी कमरे में मौजूद थी। मेज की टाप के नीचे चार कुर्सियां अड़ी हुई थीं जिन्हें भोजन के अवसर पर जव निकाला जाता होगा तो कमरे में आने-जाने का

रास्ता अवश्य वन्द हो जाता होगा।

उस वैठक में तीन दरवाजे थे। एक किचन में खुलता था, दूसरा संलग्न वैड-रूम में और तीसरा उस जीने में, जिसमें से होकर हम उस कमरे में आए थे।

श्रीमती शमशेर हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। शुरू के औपचारिक वार्तालाप के बाद वे हमारे लिए चाय वनाने किचन में चली गयीं। सरोज भी उनका हाथ वटाने उनके साथ हो ली। वाकी रह गये शमशेर जी और मैं।

एयर पोर्ट से सिटी टर्मिनस, टर्मिनस से वस स्टैंड और वस स्टैंड से घर तक, सारे रास्ते में मेरी नजरें कोपनहैगन के उस उन्मुक्त जीवन की तलाश में रहीं, जिसकी चर्चा मैं पढ़-सुनकर आया था, लेकिन उस नगर और यूरोप के अन्य नगरों के जीवन में मुझे कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं दिया था। अव अवसर मिला तो इस सम्बन्ध में शमशेर जी से बात की। वे वोले, "अभी आप इस शहर के रेजिडेन्शल इलाकों से होकर आए हैं। यहां की वह जिन्दगी तो आपको टिवोली और उसके आस-पास देखने को मिलेगी।"

जव तक चाय वनती रही, शमशेर जी अपनी कहानी सुनाते रहे कि वह डेन्मार्क क्यों और कैसे आये थे। उन्होंने वताया कि डैनिश लोग वैसे तो भारतीयों को पसन्द नहीं करते, लेकिन हम यहां की फैक्ट्रियों में लोकल लोगों से दुगना-तिगुना काम संभाल लेते हैं, इसलिए ये हमें सहन कर लेते हैं।

श्रीमती शमशेर ने चाय लाकर तिपाई पर रख दी। खुशवूदार चाय की चुस्कियां लेते हुए मैंने उनसे पूछा, "आपके वच्चे दिखाई नहीं दे रहे।"

श्रीमती शमशेर ने कहा, "लड़का फैक्टरी गया हुआ है और लड़की हस्पताल में है।"

"हस्पताल!" मैं चौंका, "खैरीयत तो है?"

शमशेर जी ने हंसते हुए कहा, "हस्पताल के नाम से घबराइए नहीं। यहां अगर किसी को जुकाम हो जाय तो भी एम्बूलैंस आकर उसे हस्पताल ले जाती है। जब तक डाक्टर फिटनैस का सर्टिफिकेट न दे, मरीज को हस्पताल में ही रहना पड़ता है।"

"मैडीकल एड, खाना-पीना सब सरकार की तरफ से मिलता है।" श्रीमती शमशेर ने वाक्य पूरा कर दिया।

मुझे अपने देश के हस्पताल याद आ गये।

चाय पीने के दौरान शमशेर जी ने हम से हमारे कार्यक्रम के सम्बन्ध में पूछा।

सरोज बोली, "हम तो यहां घूमने-फिरने आए हैं।" मेरी तरफ इशारा करके कहा, "इन्हें यहां भी कुछ काम है।"

"काम" शमशेर जी चौंके, "यहां भला क्या काम हो सकता है।"

"काम, क्रोध, लोभ वाला, 'काम' नहीं, यहां की यूनिवर्सिटी में किसी से मिलना है।"

"क्या दाखिला लेने का इरादा है?" शमशेर जी ने फुलझड़ी छोड़ी।

"नहीं, आनरेरी डाक्टरेट लेनी है।" मैंने उन्हीं के से लहजे में जवाब दिया। लेकिन वे मजाक को सच समझे। फिर मैंने उन्हें बतलाया कि मुझे यहां के सामाजिक और सैक्स जीवन के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए कोपनहैगन यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर से भेंट करनी है।

"प्रोफेसर से भेंट कल पर उठा रखिए। आज वेस्टर ब्रोगेड और स्त्रोहत की सैर कीजिए।"

"टिवोली का नाम तो मैंने सुना है, लेकिन यह स्त्रोहत और वेस्टर ब्रोगेड क्या चीज है?"

"टूरिस्ट जिस रोड को 'सैक्स बाजार' कहते हैं, उसका असली नाम वेस्टर ब्रोगेड है। स्त्रोहत उसके पास ही एक बड़ी मशहूर गली है। कोपनहैगन आने वाले सभी टूरिस्ट मौज मेले के लिए इस गली का चक्कर जरूर लगाते हैं।"

"यहां के अन्य दर्शनीय स्थल?"

शमशेर जी की नजर कलाई-घड़ी पर पड़ी। बोले, "टिवोली के करीब ही टूरिस्ट इन्फारमेशन आफिस है, मुझे उधर जाना है। आपको वहां छोड़ता जाऊंगा।"

सरोज ने श्रीमती शमशेर से कहा, "आप भी हमारे साथ चलिए।"

"घर के कुछ अधूरे काम निबटाने हैं, इस लिए आप लोग जाएं।" श्रीमती शमशेर ने जवाब दिया और शमशेर जी ने गिरह लगाई, "वेस्टर ब्रोगेड की गलियों में आप किसी वाकिफकार के साथ न जाएं तो अच्छा है।"

हम तीनों टाउन हाल के करीब बस से उतर गये। शमशेर जी ने मुझे एक रेस्तरां का कार्ड देते हुए कहा, "यह रेस्तरां मेरे एक डैनिश दोस्त का है। जब आप टिवोली और सैक्स बाजार से थक जाएं तो इस पते पर आ जाइये। यह जगह यहां से तीन-चार फरलांग के फासले पर है। मैं आपको शाम पांच बजे से रात नौ बजे तक वहीं मिलूंगा।"

हम "टूरिस्ट इन्फारमेशन आफिस" में चले गये। वहां एक युवती ने मुस्करा कर हमारा स्वागत किया।

उस युवती ने हमें उस देश के दर्शनीय स्थलों के बारे में रंग-बिरंगी पुस्तिका दी। एक पुस्तिका के कवर पर "टिवोली" लिखा था। मैंने उसे खोल कर देखा तो अनेक विदेशी भाषाओं के साथ उसमें देवनागरी में लिखी हुई ये पंक्तियां दिखाई दी :

संगीत उत्सवकाल आनन्द
रोशनी आतिशबाजी फूल
नृत्य नाट्य मूक अभिनय
प्रातःकाल से आधी रात तक।
टिवोली कोपनहैगन ॥

वह लिपि जो एयर इण्डिया के टिकट पर नदारद थी, उसे ऐक विदेशी पुस्तिका में देख कर सुखद आश्चर्य हुआ। लगा कि विश्व की प्रमुख भाषाओं में हिन्दी की गिनती हो गयी है। हमने सबसे पहले टिवोली का एक राऊंड लगाने का निश्चय किया।

दोपहर का समय था। टिवोली के गेट पर रौनक लगनी शुरू हो गयी थी। लड़के-लड़कियां गेट के आस-पास खड़े अपने-अपने साथियों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हर क्षण "हॉय" का शब्द ऊंचे सुरों में ढल रहा था और सुरों के आदान-प्रदान के साथ कोई-न-कोई अधूरा जोड़ा मुकम्मिल हो रहा था और टिवोली के गेट में प्रविष्ट हो रहा था।

हम थोड़ी देर तक द्वार पर ही खड़े रहे कि इतने में हो-हल्ला मचाते नवयुवकों और नवयुवतियों से भरी एक छत विहीन वैन गेट के सामने आकर रुकी। उसमें से मदमस्त लड़के-लड़कियां, गलवहियां डाले उतरे और टिवोली में चले गये। दस-पन्द्रह मिनिट हम अल्लड़ जवानियों का यह तमाशा देखते रहे। फिर टिकट लेकर हम भी गेट से अन्दर चले गये।

सामने ही एक सूचना-पटल पर टिवोली में होने वाले सप्ताह-भर के कार्यक्रम अंकित थे। बच्चों की रुचि के कार्यक्रम सायं ६ वजे से पहले रखे गये थे और युवावर्ग की दिलचस्पी के शाम से आधी रात तक।

सूचना पटल के ठीक सामने एक मंच वना था। उसके आगे सैकड़ों कुर्सियां खुले में विछी थीं। शाम को वहां पर मूक अभिनय होने जा रहा था।

एक जगह वेफिकरे युवक-युवतियों की टोली वायलिन की धुन पर किसी विदेशी भाषा का कोई गीत अलाप रही थी। फिर वह टोली गाती, वजाती, शोर मचाती एक रेस्तरां में दाखिल हो गई।

एक मैदान के किनारे खड़े हम यह मेला देख रहे थे कि विजली की-सी तेजी के साथ कुछ व्यक्ति वड़ा-सा रस्सा लेकर आए और उन्होंने देखते-ही-देखते एक घेरा वना लिया। लोग वस घेरे को खाली करने के लिए रस्से की उस लक्ष्मण रेखा से तुरन्त वाहर चले गये। हम सोच ही रहे थे कि यह माजरा क्या है कि एक वूढ़ी महिला ने हम दोनों को खींच कर उस घेरे से वाहर निकाल लिया और उसने इशारे से समझाया, 'यहीं ठहरो। अभी यहीं तमाशा होगा। रुक कर देखना।"

पांच मिनट के भीतर ही टिवोली के गेट से लेकर मैदान तक का सारा रास्ता एकदम सूना हो गया। उस रास्ते के दोनों ओर के दर्शकों की भीड़ इस तरह खड़ी हो गयी जैसे रामलीला की झांकियों के अवसर पर अपने देश में जुड़ आती है।

थोड़ी देर में बच्चों का एक दल, जिसमें आठ से दस वर्ष की उम्र के बच्चे थे और जिन्होंने डेन्मार्क की सैनिक वेशभूषा पहन रखी थी, टिवोली के मुख्य द्वार से कवायद करता हुआ आ गया। दल की अगुआई बैण्डवादक बच्चे कर रहे थे। उस दल ने मैदान का एक चक्कर लगाया और जिस रास्ते से वह आया था, उसी रास्ते से वापस चला गया। रस्से वाले अपने रस्से समेट कर भीड़ में गुम हो गये। यातायात पूर्ववत् चलने लगा।

बच्चों और नवयुवकों के अतिरिक्त कई अपंग पहियेदार कुर्सियों पर बैठे टिवोली में घूम रहे थे। मुझे किसी ने बताया कि वहां के हस्पतालों की ओर से मरीजों को टिवोली की सैर कराने की पूरी-पूरी व्यवस्था की गई है।

टिवोली नामक यह मेला युवक-युवतियों के मिलने-जुलने का केन्द्र बेशक था लेकिन यहां ऐसा कुछ न था जिसे अश्लील या आपत्तिजनक करार दिया जा सके।

सूचना पटल के अनुसार उस रात ग्यारह बजे आतिशबाजी छूटनी थी लेकिन शाम होते ही सर्दी इस कदर बढ़ी कि हम वहां से चले आये।

वैस्टर ब्रोग्रेड पहुंचे तो देखा, बाजार की समानान्तर गलियों में 'पोर्नो सेक्स शाप्स' अपनी बहार दिखा रही थीं। स्त्रोहत नामक बाजार में गाड़ियों से आना-जाना वर्जित था। पैदल चलने वाले दीन और दुनिया से बेखबर होकर चल-फिर रहे थे।

प्रदर्शन खिड़कियों में नग्न लड़कियों के चित्रों से भरी पत्र-पत्रिकाएं थीं। सचित्र ताश थे जिन पर गुलाम, बेगम, बादशाह की बजाय, नर-नारी की मैथुनरत मुद्रा की तस्वीरें छपी थीं। शोविन्डोज में पुरुषों के नकली गुप्तांग सजे हुए थे। कई दुकानों के आगे सैल्समैन खड़े थे और उन दुकानों के अन्दर दिखाई जाने वाली ब्लू फिल्मों से सम्बन्धित ऐसे विज्ञापन बांट रहे थे जिनमें डेनिश भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच का प्रयोग किया गया था। आशय सबका एक ही था यानी हमारे शो में अमुक देश की लड़की को अमुक मुद्रा में देखिए, या अमुक देश के जोड़े को अमुक क्रिया में रत देखें, इत्यादि।

उस बाजार में रेस्तरां और शराबखाने भी थे, जिनके दरवाजों पर लड़कियां

कच्चे-पक्के फलों की तरह झूल रही थीं। वे आते-जाते लोगों को ललचा रही थीं। उन्हें शराबखानों में आने के लिए प्रेरित कर रही थीं। मेरे साथ चूंकि सरोज थी इसलिए मैं उनके लिए एक अवांछित तत्त्व था।

एक दुकान की दहलीज पर कदम रखा तो भीतर कहीं घंटी बज उठी। उस घंटी ने भीतर मौजूद मात्र वैल बॉटम पहने एक लड़की को, जो उत्तेजक तस्वीरों वाली पत्र-पत्रिकाओं को करीने से लगाने में व्यस्त थी, नये ग्राहक को अटैण्ड करने के लिए दक्ष कर दिया। उस लड़की को अपने चेहरे के नारी सुलभ लालित्य की कमी का शायद एहसास था। अपने चेहरे पर से पुरुषों का ध्यान हटाने के लिए उसने अपना वक्षःस्थल खुला छोड़ा हुआ था।

पत्रिकाओं का मूल्य अत्यधिक था। 'सारिका' जितने क्लेवर की पत्रिका का मूल्य लगभग बीस रुपये। मुझे वहां से खाली हाथ लौटने में शर्म-सी महसूस हुई इसलिए मैंने छांटकर सबसे कम दाम की पत्रिका खरीद ली।

कई पोर्नो शाप्स में ब्लू फिल्मों के फ्रेम भी बिक रहे थे। सेल्स काउंटर पर ऐसे कलम पड़े थे जो देखने में फाउंटेन पैन थे लेकिन वह वास्तव में क्लेडियोस्कोप थे, जिनमें रतिक्रिया के चित्र पल-पल अपना रूप बदलते थे। एक दियासलाई की डिबिया भी थी, जिसमें सलाई तो एक भी न थी लेकिन ट्रांसपैरेंसी (Transparency) के रूप में जो आग थी वह अन्दर झांकने वालों की धमनियों का लहू उबाल कर रख देती थी। ऐसी उत्तेजना भरी सामग्री को गुप्त रूप में रखने की जरूरत डेन्मार्क वासियों को न थी बल्कि यह गोपनीयता उन पर्यटकों की सुविधा के लिए रखी गयी थी, जिनके देश में अश्लील सामग्री के प्रवेश पर कानूनी पाबन्दियां हैं। डेन्मार्क के वे उत्पादन अन्य देशों में सरलता से स्मगलर हो जाएं, यही उद्देश्य उन छुपे आविष्कारों का जनक जान पड़ा।

इन पार्नो शाप्स में फिरकी वाले बाइस्कोप पड़े थे जो पांच क्रोनर[1] का सिक्का खाते ही जिस्मों का खेल दिखाना शुरू कर देते थे। उसे देखने के लिए चार इंच की गोलाई वाले एक पाईप में आंख सटानी पड़ती थी। एक बार सिक्का डालने से पांच

---

१. उन दिनों (१९७२ में) एक क्रोनर लगभग एक रुपये का था।

मिनट तक मूक ब्लू फिल्म दिखती रहती थी। बैक ग्राऊंड में नारी सीत्कार की आवाज का रेकार्ड चलता रहता था।

जिस दुकान पर हमने एक ऐसी ही फिल्म देखी थी, वहां आठ-दस साल का एक लड़का भी बैठा था। वह शायद दुकान मालिक का बेटा था। वह बड़ी बेनियाज़ी से फिल्म के प्रति हमारी उत्सुकता को देख रहा था। उस बच्चे के सामने पाईप में आंख सटा कर फिल्म देखते हुए मुझे लगा कि मैं बालसुलभ उत्सुकता से भरा एक बच्चा हूं और वह एक ऐसा बुजुर्ग है जिसने दुनिया देख रखी है।

उसी दुकान के काउंटर पर तैनात से रखे प्लास्टिक के पुरुषांग देखकर मैं सोच ही रहा था कि उन्हें कौन खरीदता होगा और उनका कैसे प्रयोग करता होगा कि नर-नारी का एक यूरोपियन जोड़ा दुकान में आ गया। महिला ने नकली पुरुषांग का दाम पूछा। चैक करने के लिए एक दो अंगों को उठाकर उनके अंचल से लगा बटन दबाया। अंग में स्पन्दन होते देखकर उसने ओ० के० कहा और आधे दर्जन के दाम चुका कर तथा उन्हें अपने बैग में डालकर वह अपने साथी का हाथ थामे बाहर चली गयी। यह खरीदारी हमारे मन में उठे अनेक सवालों का जवाब थी और इसके साथ ही कई नये प्रश्नचिह्नों की जननी भी।

थोड़ी देर बाद हम शमशेर जी के बताये हुए पते, एक रेस्तरां में मौजूद थे।

रेस्तरां के शब्द से जो वातावरण कल्पना में उभरता है, वैसा वहां कुछ न था। बिना कुशन की बीस पच्चीस कुर्सियां, बुझी-बुझी सी रंगत वाली मेजों के गिर्द बिछी थीं। एक कोने में बार काउंटर था। एक गोरा-चिट्टा युवक काउंटर की दूसरी ओर बारमैन के तौर पर मौजूद था। उसके निकट ही शमशेर जी थे। यही बारमैन शमशेर जी का डेनिश मित्र था और रेस्तरां का मालिक था।

काउंटर की पिछली तरफ किचन था जिसकी देख-रेख श्रीमती शमशेर करती थीं। किसी ग्राहक के आने पर वह डेनिश युवक उससे आर्डर लेता था और ड्रिंक्स सर्व करता था। भारतीय खाना परोसने का काम शममेर जी के जिम्मे था।

एक मेज पर दो तीन हिप्पी टाईप के गोरे भारतीय भोजन को एडवैंचर के

रूप भी ग्रहण कर रहे थे। पंजाब के देहाती घरों में पकाई जाने वाली मोटी चपातियों को उत्तरी भारत के शहरी लोग भी भंगड़ा शो देखने के साथ भले ही सहन करते हों, पसन्द नहीं कर सकते। वही चपातियां यदि योरोपियनों के सामने भारतीय भोजन की प्रतिनिधि कहकर परोस दी जाएं तो वे उसे एडवैंचर के अलावा क्या समझ सकते हैं।

उनसे कुछ फासले पर एक गुजराती जोड़ा बैठा था। उनके आगे चने और चावल परोसे हुए थे।

एक कोने में बिछी मेज पर तीन पंजाबी युवक किसी मसले पर बातचीत कर रहे थे।

शमशेर जी ने तीनों से परिचय कराया। एक थे श्री राना। कलाई में पहने लोहे के कड़े से लगता था कि सिख हैं लेकिन उनके बाल पश्चिमी ढंग से कटे हुए थे। वह वहां की एक फैक्ट्री में काम करते थे।

दूसरे श्री सतनाम सिंह थे। वह डेन्मार्क के एक दूसरे नगर ओडेंसे के निवासी थे। भारत में बंसरी बजाना उनका शुगल था लेकिन यहां पेट पालने का साधन बना हुआ था। उनकी जो सांस बांसुरी से होकर निकलती थी, वह रेकार्ड के रूप में मार्केट में आ जाती थी। अब उन्होंने डेनिस भाषा में गाना और वहां के रेस्तरानों में आवाज का जादू जगाना शुरू कर दिया था।

तीसरे सिक्ख सज्जन का परिचय देने से पहले शमशेर जी ने कहा—"आप यहां की यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर से इस गर्ज से मिलना चाहते थे कि वह यहां की सोसाइटी के बारे में आपको बताएं। यहां के समाज के बारे में आपको जो बात प्रोफेसर नहीं बता सकते..." तीसरे सज्जन की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा—"वह यह बता सकते हैं।"

हाथ मिलाते समय मैंने उन्हें अपना परिचय दिया। जबाबी परिचय में उन्होंने कहा—"बस मुझे एक हिन्दुस्तानी ही समझ लीजिये। इस मुल्क में शमशेर जी के आने से पहले का मैं वासी हूं और यहां की सोसायटी से पूरी तरह वाकिफ हूं।

शुरू में यह अनाम सिख सज्जन बड़े रहस्यमय लगे लेकिन बाद की बातचीत

में वड़े जिन्दादिल सावित हुए।

परिचय के आदान-प्रदान के दौरान सरोज श्रीमती शमशेर के पास किचन में चली गयी थी। और तीन सज्जनों से मेरा परिचय कराकर शमशेर जी नवागंतुक ग्राहकों से आर्डर लेने चले गये। जव कभी शमशेर जी अपने काम से खाली होते तो एकाध मिनिट के लिए वातचीत में शामिल हो जाते रहे।

हमारी मेज पर ड्रिंक्स का आर्डर लेने के लिए डेनिश वारमैन आए, उन्हें आर्डर देने की जिम्मेदारी भी उन्ही अनाम साहव ने स्वयं ही ले ली। मुझसे मेरी पसन्द पूछी गयी। मैंने कहा—"मैं लेता तो नहीं लेकिन आप लोगों के साथ महज गिलास टकराने के लिए कुछ भी ले लूंगा।"

शेप दोनों ने अपनी-अपनी पसंद वता दी। और वातचीत के दरम्यान आर्डर के ड्रिंक्स सर्व भी हो गये।

वातचीत हल्के-फुल्के वातावरण में हो रही थी। वीच-वीच में एक-दूसरे पर चुटकियां और फब्तियां भी कसी जा रही थीं। मिसाल के तौर पर जिन्दादिल सरदार जी ने राना साहव को छेड़ते हुए कहा—"देखिये साहव, इसने पहले तो केस इसलिए कटा दिए कि इसे रोज सुवह सवेरे ड्यूटी पर जल्दी जाना होता है। वालों की ड्रेसिंग करने का वक्त नहीं मिलता। अव वाल वढ़ाने की फिक्र में हैं क्योंकि वाल कटे सिख को सिख घराने की कोई लड़की मिल नहीं सकती और इन्हें शादी के फिरक में कुछ महीने वाद भारत जाना है।

"यहां लड़कियों की क्या कमी जो व्याह करने के लिए राना साहव भारत की यात्रा करेंगे ?" मैंने कहा।

"साहव उन लड़कियों के साथ तो एक आध शाम गुजारी जा सकती है जवकि हिन्दुस्तानी लड़की के साथ पूरी जिन्दगी। यहां तो छोटी-छोटी वात पर तलाक की अर्जी तैयार हो जाती है।"

"तलाक के कारण ?"

"यहां लोग इतने व्यक्तिवादी हैं कि दूसरे के वंधन को जरा बर्दाश्त नहीं कर पाते। नयी रोशनी के ज्यादातर लड़के-लड़कियां ड्रग्स लेने के आदी होते हैं। पति-

पत्नी सब अपने-अपने मित्रों का अलग सर्कल रखते हैं। उनमें से कोई भी, दूसरे के घेरे में उसकी इजाजत के बगैर दखल नहीं देता, बल्कि अपने घेरे की रक्षा करता है। जब तक वे अपने-अपने घेरे में रहते हैं, विवाहित जीवन सुखी रहता है लेकिन जब कोई एक दूसरे की मर्जी में दखल देने लगता है तो झट तलाक हो जाता है।"

"कितने प्रतिशत जोड़े तलाक लेते हैं?"

राना जी कुछ कहना चाहते थे लेकिन अनाम साहब ने उन्हें हाथ के इशारे से रोकते हुए कहा—"अगर आपके पास पक्की इन्फरमेशन हो तो कहिए, वर्ना मुझे इनका जवाब देने दीजिए।"

इस पर राना जी चुप हो गये और फिर बातचीत ज्यादातर मुझमें और उनमें ही होती रही। मेरी बात का जवाब उन्होंने यह दिया—"शादी के बाद साल भर तक तलाक पाने पर कानूनी बंदिशें ज्यादा हैं इसलिए एक साल तो हरेक को जैसे-तैसे बिताना पड़ता है। यह मियाद खत्म होते ही जिन्होंने तलाक लेना होता है, ले लेते हैं।"

"कितने प्रतिशत जोड़े?" मैंने अपना सवाल दोहराया।

वे कुछ क्षण सोचते रहे। फिर बोले—"लगभग एक चौथाई जोड़े।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद पांच सात प्रतिशत शुरू के तीन सालों में ले लेते हैं।"

"गोया शुरू के तीन सालों में एक तिहाई जोड़े फिर से अविवाहित हो जाते हैं। दो तिहाई जोड़े फिर भी अपने पुराने साथियों को नहीं छोड़ते।"

"हां, तीन साल के बाद तलाक लेने वालों की तादाद बहुत घट जाती है। और जिनका विवाहित जीवन सात साल से अधिक पुराना हो जाता है, वे इतना लम्बा दाम्पत्य जीवन निभा लेने की खुशी में कई फंक्शन करते हैं।"

"सुना है यहां रात भर के लिए पत्नियां बदलने का रिवाज है?"

"खुले आम नहीं। कुछ यहां के अल्ट्रा माडर्न समाचार पत्रों के 'मित्रता' स्तम्भ में यह विज्ञापन देते हैं कि हम दोस्तों का घेरा बढ़ाने के लिए आपको अवसर देंगे। विज्ञापन में खुली बात नहीं छपती लेकिन विज्ञापन की भाषा इस तरह की होती है कि जिनके लिए विज्ञापन होता है, वे उसका मूल आशय समझ जाते हैं। मसलन विज्ञापन

के अंत में ये शब्द कि मेल फीमेल का जोड़ा ही हमारा सदस्य बन सकता है, इत्यादि।"

मुझे वे विज्ञापन याद आ गये जो पन्द्रह-बीस वर्ष पहले भारत के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ करते थे। उन दिनों गर्भपात को सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त नहीं था। तब 'किसी भी वजह से रुके' मासिक धर्म को फिर से जारी करने वाली दवाई के विज्ञापन के अंत में यह चेतावनी लिखी रहती थी—"खबरदार! गर्भवती स्त्रियां इसका सेवन हर्गिज न करें, इससे शर्तिया गर्भपात हो जाएगा।"

मैंने फिर पूछा—"किस समाचारपत्र में ये विज्ञापन प्रकाशित होते हैं?"

"इस किस्म के विज्ञापनों के लिए यहां का समाचार पत्र 'एस्त्राब्लेदे' बड़ा मशहूर है।"

"यह किस भाषा में छपता है?"

"डेनिश में।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि इसी देश के लोग ही इसे पढ़ पाते हैं जबकि मैंने यह सुना है कि यहां के लोगों की अब सैक्स में कोई दिलचस्पी नहीं रही है।"

"ऐसे विज्ञापन होते टूरिस्टों के लिए हैं। भले ही वे स्वयं उन्हें पढ़ नहीं पाते लेकिन यहां उनका जिन लोगों से वास्ता पड़ता है, वे उन्हें यह सूचना दे देते हैं। होटलों में स्थित हेयर कटिंग सैलून टूरिस्टों को यह सूचनाएं देने के माध्यम हैं।"

"मैंने सुना है कि सैक्स के बन्धन मुक्त होने से यहां के अपराधों की संख्या घट गयी है। क्या यह बात ठीक है?" यह सवाल करके मैंने मानो एक हवाई के पलीते को आग दिखा दी।

जवाब मिला—"यकीनन घट गये हैं। कुछ तो इसलिए कि पहले जो काम कानून की नजर में जुर्म थे, उनमें से अनेक अब जुर्म नहीं रहे। और कुछ इसलिए कि अब यहां की नगरी में जात्रियों के लिए बड़ी कशिश पैदा हो गयी है और उनकी आवभगत में यहां के लोकल लोग इतने बिज़ी हो गये हैं कि उन्हें अपराध करने की फुरसत ही नहीं मिलती।"

उनके 'जात्री' शब्द पर मैं बिना मुस्कराये रह न सका। नया सवाल करने की बजाय, मैंने उनसे बात तनिक स्पष्ट करने का निवेदन किया। वे बोले—"नये

कानून से पहले सैक्स के फोटो, पोर्नो फिल्म या लिट्रेचर वेचना एक जुर्म था। ये सब धन्धे करने वाले पहले मुजरिम माने जाते थे। अव वह जुर्म नहीं रहा। सिर्फ इतनी बंदिश है कि चौदह साल से कम उम्र के वच्चे को पोर्नो सैक्स शाप पर विठाना या इससे कम उम्र के वच्चे के हाथ यह सब वेचना जुर्म है।"

मैं वात काट कर इस विषय पर अपना आंखों देखा वयान करना चाहता था लेकिन पलीता आग पकड़ चुका था और विना दूसरे छोर तक पहुंचे वह रुक न सकता था। वे फर्माते जा रहे थे—"प्रासीच्युशन के लिए कोई इलाका मुकर्रर नहीं है सिर्फ एक ही वन्दिश है कि इस धन्धे में लगी हर रजिस्टर्ड लड़की हर हफ्ते एक वार अपना खून टैस्ट कराए। वस अव तो सैक्स के मामले में सिर्फ एक काम जुर्म रह गया है…?" यह कहकर वे रुके, जैसे वे श्रोताओं में से किसी के मुख से 'क्यों' सुनने की इन्तजार कर रहे हों। यह काम मैंने कर दिया और फिर उन्होंने जैसे हवाई छोड़ दी—"चौदह साल से कम उम्र की लड़की को 'रेप' करना।"

"इससे अधिक उम्र की लड़की या औरत के साथ रेप के वारे में कानून की क्या राय है?" मैंने पूछा।

"लड़की की उम्र अगर चौदह साल से ज्यादा हो तो कानून की नजर में वह केस 'रेप' का सावित करना मुश्किल होता है।" उन्होंने कहा और सतनाम जी ने लुकमा दिया—"चौदह साल से एक पल भी निकलती उम्र की औरत से तो मर्द को 'रेप' का खतरा रहता है।" इस वात पर एक फरमायशी ठहाका हुआ। फिर मैंने भी अपनी आंखों देखी वयान कर दी।

"यहां के कायदे-कानूनों को यहां के लोग किस हद तक मानते हैं, इस विषय पर मैं कुछ नहीं कह सकता। मैंने इतना देखा है कि एक पोर्नो सैक्स शाप में एक वच्चा दुकानदार का हाथ वंटा रहा था।"

"देखिए साहव, कानून से छूट की गुंजायश तो लोग निकाल ही लेते हैं।" फिर उन्होंने मिसाल दी—"अव यह कानून अपनी जगह कायम है कि पेशा कराने वाली हरेक लड़की के लिए हर हफ्ते अपना व्लड टैस्ट कराना लाजिमी है लेकिन हर हफ्ते अपने खून की शीशी देने की वजाय वे लड़कियां इसमें अपना भला ज्यादा समझती हैं कि प्रासीच्यूशन के लिए अपना नाम ही रजिस्टर्ड न कराएं। रजिस्टर्ड

पेशावर लड़कियों से ज्यादा तादाद उनकी होती है जो देश-विदेश से आए ब्वायज की एवरग्रीन गर्ल फ्रैंड बनकर कानून की आंखों में धूल झौंकती रहती हैं।"

अवैध काम को वैध बनाकर चलाने की एक मिसाल अनाम सरदार जी को भूल गयी थी। वह कसर पूरी की सतनाम जी ने। उन्होंने बताया कि पोर्नो सैक्स लाईव शो पब्लिक के लिए नहीं होते। सिर्फ क्लब के मैम्बरों को दिखाने पर सरकार ऐतराज नहीं करती। एक दो दिन के लिए इस शहर में आने वाला टूरिस्ट किसी क्लब का मैम्बर कैसे बन सकता है?" उसका इलाज यहां के क्लब मालिकों ने यह किया है कि वे दर्शकों को उन शोज की टिकट नहीं देते बल्कि उन्हें टैम्परेरी मैम्बरशिप के चन्दे की रसीद देकर वे उनकी हाल में एन्ट्री कराते हैं।"

ड्रिक्स का दौर खत्म हो गया था। किसी ने किसी को कम या ज्यादा पीने पर मजबूर नहीं किया था। यह स्थिति मेरे लिए अनुकूल था।

खाने की बारी आयी तो मैंने सरोज को भी बुला लिया। सादे कागज पर टाईप किए हुए मीनू में दो तीन डिश निरामिष थे, दो तीन सामिष। मैंने अपने लिए चने, चावल और सरोज के लिए मटर व पनीर और चपाती मंगा ली। साथियों ने अपनी पसन्द की वस्तुएं मंगा लीं।

भोजन इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर तैयार किया गया था कि खाना जीवित रहने के लिए होना चाहिए।

भोजन के दौरान मैंने सैक्स फेयर के बारे में पूछा। अनाम साहब का जवाब था कि पहला सैक्स फेयर १९६७ में यहां से लगभग १०० मील दूर 'ओडेंसे' नगर में लगा था। दूसरा कोपनहैगन के क्लैम्पन बाग में मनाया गया था। तीसरा मैला १९७१ में लगना चाहिए था, लेकिन अब तक लगा नहीं। न लगने का कारण उन्हें ज्ञात न था।

इन मेलों का परिणाम पूछा तो वे बोले—"इन फेयर्स से पहले यहां कभीं कोई टूरिस्ट भूले भटके नहीं आता था। अब यहां होटलों में रात बसर करने की जगह नहीं मिलती। यहां की ब्लू फिल्में अशर्फियों में, मुआफ कीजिए अशर्फियों का तो जमाना नहीं रहा, यों कहिए गोल्ड बिस्किट्स में तुलती हैं और दुनिया के हर हिस्से में स्मगल होती हैं।"

(शेष अगले अंक में)

हमारे जीवन आधार

—ब्रह्मर्षि सितेश

रात्रि में तारागण और चन्द्रमा और दिन में सूर्य ही प्रकाश देने वाले हैं। न केवल प्रकाश वरन् जीवन भी इन्हीं से प्रेरणा पाता है। इसी पाश्चात्य संस्कृति ने शुक्र गृह तथा चन्द्रमा को अपनी संस्कृति का आधार मानकर उन्हीं के सहारे अध्यात्म में उन्नति की है।

वस्तुतः और चन्द्रमा आदि ग्रह सूर्य से ही प्रकाश पाते हैं। जिस प्रकार निराकार ब्रह्म मानव देह द्वारा साकार प्रगट हुआ है, उसी प्रकार ये विभूतियां तारे, चन्द्रमा और सूर्य भी उसी के प्रतीक कहे जा सकते हैं। वैदिक संस्कृति का आध्यात्मिक आधार विन्दु सूर्य ही है। मात्र हिन्दु राज्य नैपाल की राष्ट्रीय पताका पर सूर्य और चन्द्रमा के चित्र ही बने हैं। प्रजा रक्षक क्षत्रिय सूर्य और चन्द्र वंश में ही विभाजित हैं जिनमें क्रमशः भगवान राम और भगवान कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ। वे ही हमारी सस्कृति के प्रेरणा स्रोत हैं। उन्हीं द्वारा हमारा आध्यात्मिक पथ सदैव आलोकित रहा है।

प्रकाशपुंज श्वेताकार (कर्पूर गौरम्) शिव सूर्य का ही मानवी आकार हैं। उनके शरीर से लिपटे भुजगेन्द्र (सर्प) ही किरणें हैं और नीलाम्वर उनकी जटाएं हैं। वह इसी कारण महादेव कहलाते हैं। शक्ति उन्हीं से विकसित होकर उन्हीं में लय हो

जाती है। शान्त रूप में सतो गुणी, चेतन रूप में रजोगुणी और तेजपूर्ण रूप में वह तमोगुणी है। शीघ्र ही प्रसन्न भी हो जाते हैं और रुद्र भी हो जाते हैं। जिस प्रकार उन्हें भजा जाय उसी रूप में वह प्रसन्न होकर रक्षा करते हैं और दर्शन भी दे देते हैं।

देवताओं में सर्वप्रथम आराध्य गणेश जी कहे गये हैं। वे शिव के पुत्र माने गये हैं। वह भी सूर्य ही का अन्य रूप है। उनका मुख और मुकुट सूर्य ही है। उनकी सूंड सूर्य की किरणें हैं जो उनके मुख से पृथ्वी तक फैली हैं। उनका विशाल उदर ही अन्तरिक्ष है। इन्हीं कारणों से विद्यावारिधि और बुद्धिप्रदाता होने के नाते सर्व मंगलमय हैं और उनका स्थान सर्वोपरि है। सब ही मांगलिक कार्यों में उनका सर्वप्रथम आह्वान किया जाता है क्योंकि वह गणपति हैं। सदा परिवर्तनशील पृथ्वी उनका आधार अथवा सवारी का चूहा है।

आधिभौतिक रूप में वे अग्नि और तेजपूर्ण हैं। आधिदैविक रूप से वे ब्रह्म के प्रतीक सूर्यदेव हैं। और आध्यात्मिक रूप से वह समस्त जीवन, शक्ति और प्राण के स्रोत हैं। उत्पत्ति पालन तथा अन्त उन्हीं से होते हैं। उन्ही से विकसित होते है और अन्त में उन्हीं में लय हो जाते हैं। समस्त जड़-चेतन सूर्य द्वारा ही स्थित, जीवित और गतिशील रहते हैं। ज्योति, प्रकाश, तेज और प्राण सूर्य के द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। उन्हीं द्वारा अन्य नक्षत्र भी गति पाते हैं। दिन-रात, शीत-उष्ण, प्रकाश अन्धकार सूर्य द्वारा ही होते हैं। हिम, प्रस्तर, चट्टान, पर्वत मरूभूमि और पृथ्वी के कण-कण सूर्य द्वारा ही इस स्थिति में पहुंचे हैं। स्वास्थ्य, रोग, भौतिक और आर्थिक उपलब्धियां सूर्य द्वारा ही प्राप्त होती हैं। समस्त चुम्बक शक्ति, विद्युत तथा ऊर्जा, सृष्टि का सृजन, पालन तथा प्रलय सूर्य द्वारा ही होते हैं। सातों रंगों का भण्डार सूर्य में ही है जिनको वर्षा ऋतु में आकाश में धनुष और गोलों के रूप में देख सकते हैं। सूर्य की किरणों के प्रभाव से शरीर रक्तिमा और सौन्दर्य पाता है और उनके अभाव में मटि-याला, श्वेत तथा पीला, होकर मृतक भी हो जाता है।

गीता कहती है कि मानव शरीर में हृदय के मध्य अंगुष्ठाकार ज्योतिपुंज आत्मा ही से जीवन है उसकी झलक सूर्य जैसी ही है—जिस प्रकार समष्टि आत्मा सूर्य रूप में दिखाई देता है उसी प्रकार उसकी स्थिति है। उसी का पार्थिव प्रतीक मन्दिरों में

शिव लिंग विराजमान है और वे मन्दिर भी पूर्व मुखी वने हैं जिससे उनके द्वारों में होकर निकलते हुए सूर्य की किरणें शिवलिंग को प्रकाशित कर सकें। साधक भी पूर्व मुख बैठकर ही साधना करता है जिससे वह सूर्य द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर सके, सूर्य वाह्य तथा आन्तरिक प्रकाश का भी प्रेरक है। उसी के द्वारा वाह्य और आन्तरिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। उसी से अज्ञान अंधकार दूर होकर ज्ञान का प्रकाश होता है।

गायत्री ने कहा है कि "जो सबको जीवित रखता है, जो सबकी रक्षा करता है अथवा दुःख से बचाता है और गति प्रदान करता है, उस सबके उत्पन्न करने वाले परम देव के अत्यन्त आनन्ददायक तेज का ध्यान करें जिससे वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करे अथवा-सुमार्ग पर चलावें।"

एक मन्त्र में कहा गया है कि तेज और प्रकाश से पूर्ण अग्निपुंज हमें उत्तम मार्ग से अभ्युदय की ओर ले चल, तू हमारे सब कर्म जानता है। यहां तक कि हमारे मानसिक संकल्प भी तुझे भली प्रकार विदित हैं। अतः कुटिलता और पाप से हमारी बुद्धि को सदैव दूर करने की हमें शक्ति प्रदान करता रहा। हम तेरे सम्मुख आत्म-समर्पण करते हैं।"

नक्षत्रों तथा खगोल विद्या का केन्द्र सूर्य ही है। ज्योतिष में सूर्य को पांचवां ग्रह कहा जाता है। जिसका सूर्य प्रबल होता है उससे उसका अन्य ग्रहों का अनिष्ट फल कम हो जाता है। जो सूर्य निकलने के प्रथम प्रहर में उत्पन्न होते हैं वे उच्च कोटि के मस्तिष्कवान, उदार और निर्णायक होते हैं। उनका व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन आनन्दमय वीतता है। दोपहर तथा अर्धरात्रि में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति तेजपूर्ण शासक बुद्धि वाले होते हैं। रविवार और अमावस्या को उत्पन्न होने वाले आत्मज्ञानी, महात्मा और असाधारण व्यक्तित्व वाले होते हैं। उस दिन सूर्य का पूर्ण तेज और महत्व उन्हें मिलता है।

मरने के बाद जड़ शरीर पांच तत्वों में विलीन होने लगता है। आत्मा के शरीर छोड़ते ही व्यष्टि-प्राण समष्टि-प्राण में प्रविष्ट होने लगता है। शरीर का तेज अग्नि तत्व में विलीन होने लगता है। जड़ शरीर पृथ्वी तत्व में परिणित होने लगता है। शरीर का जल वाष्प बनकर जल तत्व में बहने लगता है। अग्नि इस प्रक्रिया में अति

सहायक है, इसी कारण शरीर की मृत्यु के उपरान्त दाह क्रिया की परिपाटी अपनाई जाती रही है।

सिर का भाग अकाश तत्व से पूरित होता है। नेत्रों का सम्बन्ध सूर्य से है। मुख में अग्नि और कानों में प्राण-वायु का वास है। अन्त समय में प्राण ऊर्ध्व गति से बहने लगता है। जिनका प्राण पूर्णतः सशक्त है वही सहस्रार तक उसे ले जाने में समर्थ होते हैं और ब्रह्माण्ड द्वारा प्राण उत्सर्ग करने में भी समर्थ हो जाते हैं। अधिकतर मुख द्वारा ही प्राण छोड़ते हैं। मल-मूत्र के द्वारा छोड़ने से मनुष्य-योनि से निम्नतर योनियां जैसे पशु और पक्षी आदि प्राप्त होती है जो केवल भोग योनि है। पाप क्षीण हो जाने पर पुनः मनुष्य योनि मिल जाती है।

सूर्य के उत्तरायण में शरीर छोड़ने पर सूर्य लोक में और सूर्य के दक्षिणयाण होने पर शरीर छोड़ने. वाले चन्द्रलोक को जाते हैं। इसी कारण महाभारत काल में भीष्म पितामह ने दक्षिणायण में शरीर छोड़ना स्वीकार नहीं किया और उत्तरायण होने तक शरीर को वाणों की नोक पर ही रखना सहन किया और सूर्य के उत्तरायण होने पर ही अपने शरीर को छोड़ा।

समष्टि आत्मा अथवा परमात्मा सूर्य द्वारा भी प्रगट माना गया है। मानव देह में वह गर्भ में शिर अथवा ब्रह्माण्ड द्वारा प्रविष्ट होता है और उस जीव के जन्म लेने के वाद धीरे-धीरे वहां से सहस्रार—आज्ञा चक्र में होता हुआ हृदय में आ जाता है। इस प्रकार सुषुम्णा पथ से ही वहता है और अन्त में शरीर छोड़ने से पूर्व उसी पथ द्वारा ऊर्ध्व गमन करने लगता है।

सच्चिदानन्द की चेतना सूर्य द्वारा ही प्रगट हुई है। वही चेतना हमारी बुद्धि का स्रोत है। उसी का विकास होने पर आनन्द उत्पन्न होता है।

सूर्य ही स्वास्थ्य प्रदान करने वाला है। सूर्य किरणों की चिकित्सा अनमोल तथा सर्व सुलभ और महा गुणकारी है। शीत, दुर्वलता और रोगों से छुटकारा दिलाने वाला सूर्य प्रकाश ही है। सदा सूर्य प्रकाश में रहने और कार्य करने वाले सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहते हैं। सूर्य भौतिक उन्नति का आधार है। ऊर्जा का भण्डार है। सूर्य हमारी संस्कृति का सर्वप्रथम प्रेरणा प्राप्त करने का स्रोत है। सूर्य के आधार पर ही

हमारी आध्यात्मिक उन्नति होती रही है। साधक का ध्यान तभी सम्पन्न माना जाता है जब उसका आन्तरिक प्रकाश उन्नत होने लगता है। आकाश में हजारों सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होवे वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही होवें—ऐसा ब्रह्म साक्षात्कार होने पर होता है।

सूर्य पर त्राटक करने से बुद्धि अत्यन्त प्रखर हो जाती है और छिपी हुई वस्तुओं का ज्ञान होने लगता है। जिनको नेत्रों के त्राटक से कष्ट अथवा रोग की उत्पत्ति जान पड़ती हो, वे आन्तरिक संयम अपना सकते हैं। इस प्रकार सूर्य पर संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है। लक्ष्य मोक्ष का ही उत्तम है जिसमें सिद्धियां बाधक हैं।

(पृष्ठ २८ का शेष)
डाई-ऑक्साइड समा जाती है। दूसरे शब्दों में रक्त गन्दा हो जाता है। यह गन्दा रक्त शुद्ध होने के लिए फिर मेरे पास लौटता है। इस गन्दे रक्त के लौटने का क्रम शुद्ध रक्त-व्यवस्था के विपरीत होता है।

गन्दे रक्त को ले जाने वाली नलिकाएं 'शिराएं' कही जाती हैं। पहले गन्दा रक्त बारीक-बारीक केशिकाओं में आता है; फिर ये केशिकाएं अपेक्षाकृत मोटी शाखाओं में बदल जाती हैं, अन्त में इनकी दो मोटी महाशिराएं बन जाती हैं जो अशुद्ध रक्त को मेरे पास शुद्ध करने के लिए लाती हैं। अशुद्ध रक्त का रंग कुछ कालापन लिये होता है।

इस स्थल से मेरा मुख्य काम शुरू होता है जिससे मेरी चमत्कारपूर्ण कार्यविधि आपको ज्ञात होगी।

जैसा कि मैं आपसे कह आया हूं—मेरे पास चार कमरे हैं। नीचे के दोनों कमरे (एक दायें और एक बायें) ये निलय या वैण्ट्रिकल कहलाते है। इन दोनों कमरों की दीवारें बहुत मजबूत और मोटी पेशियों की बनी हैं क्योंकि इन्हें चौबीस घण्टे ही रक्त धकेलना (पम्प करना) होता है। ऊपर के दोनों कमरे (एक दायें, एक बायें) 'अलिन्द' या आरिकल कहलाते हैं। इनकी दीवारें इतनी मोटी नहीं होतीं क्योंकि इन्हें रक्त ग्रहण करने का हल्का काम करना होता है।

दो मोटी शिराओं द्वारा मैं इस्तेमालशुदा रक्त को दाहिने अलिन्द (ऊपर वाले दायें कमरे) में ग्रहण करता हूं। इस कमरे की दीवारें सिकुड़ती हैं और रक्त को नीचे वाले कमरे अर्थात् दाहिने निलय में पहुंचा देती हैं। इन दोनों कमरों के बीच मैंने **कपाट लगाए हुए हैं जिन्हें वाल्व कहते हैं।** ये कपाट इस तरह के फाटक हैं जो एक ही तरफ अर्थात् निलय की ओर को ही खुलते हैं। जब ऊपर के कमरे की दीवारें सिकुड़ती हैं तो ये कपाट खुल जाते हैं, खून निलय में आ जाता है और कपाट बंद हो जाते हैं। कपाटों की यह व्यवस्था इसलिए की गई है ताकि खून अलिन्द में वापस न आ सके।

दूसरे स्थानों में भी जहां-जहां खून न वापस जाने का खतरा होता है, इन कपाटों को व्यवस्था है। उन सभी की जानकारी मैं आपको जगह-जगह देता चलूंगा।

इस दाहिने अलिन्द और दाहिने निलय के वीच लगे कपाट 'त्रिमुखी कपाट' (ट्राइकस्पिड वाल्व) कहलाते हैं। जब इस दाहिने निलय में रक्त पहुंचता है तो इसकी मोटी मजबूत पेशियां सिकुड़कर रक्त को जोर से फेफड़ों में जाने वाली धमनियों में धकेल देती हैं। ये धमनियां खून को शुद्ध करने के लिए फेफड़ों में ले जाती हैं। इन धमनियों और दाहिने निलय के बीच भी कपाट लगे हैं ताकि रक्त वापस न आए। इन्हें फुफ्फुसीय कपाट (पल्मोनरी वाल्व) कहते हैं।

फेफड़ों में पहुंचकर जब यह अशुद्ध रक्त श्वास-प्रश्वास द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण करके शुद्ध हो जाता है तो दो शिराओं (नलिकाओं) द्वारा वायें अलिन्द अर्थात् वायीं ओर के ऊपर के कमरे में वापस आता है। अब वायां अलिन्द सिकुड़ता है और आए हुए शुद्ध रक्त को नीचे के कमरे (वाएं निलय) में डाल देता है।

दोनों कमरों के मध्य भी कपाट हैं जिन्हें माइट्रल वाल्व कहते हैं। अब बाएं निलय का काम होता है—शुद्ध रक्त को सम्पूर्ण शरीर के लिए भेजना। फलतः इस निलय की मोटी दीवारें जोर के साथ सिकुड़ती हैं और शुद्ध रक्त को महाधमनी (एओरेटा) में धकेलती रहती हैं। यह महाधमनी बाएं निलय के ऊपर जुड़ी रहती है। इन दोनों के मध्य भी कपाट रहते हैं जिन्हें महाधमनी कपाट (एओरैटिक वाल्व) कहा जाता है। यह महाधमनी अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं द्वारा रक्त को सारे शरीर में पहुंचाती है।

यह है संक्षेप में मेरे कार्य का वर्णन। लेकिन अभी कुछ जरूरी बातें और बाकी हैं जो मुझे बतानी हैं।

यहां तक मैंने आपको यह बताया कि जिन्दगी के लिए निहायत जरूरी तत्त्व शुद्ध हवा (ऑक्सीजन) मैं आपको रक्त के माध्यम से किस प्रकार दिलवाता हूं लेकिन अभी भोजन और पानी की बात बाकी रह जाती है जिसका मैं पीछे उल्लेख कर चुका हूं। यह प्रक्रिया बहुत सरल है; रक्त-शोधन के समान पेचीदा नहीं है।

आपका खाया हुआ भोजन और पिया हुआ पानी आंतों में पहुंचता है। आंतों के कोष भोजन से पोषक तत्त्व और पानी खींच लेते हैं और मेरी धमनियों की जो प्रशाखाएं आंतों में गुजरती हैं उन्ही के रक्त में मिला देते हैं। मैं यह कह सकता हूं कि

आंतों के कोषों के साथ यह मेरा समझौता है कि पानी और पोषक तत्त्व वे मुझे दिया करेंगे और इस समझौते का अक्षरश: पालन होता है।

अब मुझे एक बड़ी और दिलचस्प बात अपने सम्बन्ध में कहनी है। यदि उसे नहीं कहूंगा तो मेरी यह दास्तान अधूरी ही रह जाएगी। जैसा कि मैं पहले भी बता आया हूं कि शरीर के हरेक अंग और रचना को खून की जरूरत होती है। इसी तरह मुझे भी अपना काम करने के लिए रक्त दरकार होता है।

यहां यदि आप यह सोचते हों कि मेरे पास तो हर वक्त रक्त का आवागमन रहता है, फिर मुझे खून की क्या जरूरत ? तो आपका यह सोचना गलत है। दरअसल मेरी स्थिति बैंक के खज़ांची जैसी होती है जिसके हाथ से रोज लाखों रुपया इधर-उधर होता है लेकिन वह रुपया जरा भी उसके अपने काम नहीं आता। उसे अपनी गुजर-बसर अपनी तनखा से करनी होती है। ठीक उसी तरह मुझे तनखा के रूप में खून की सप्लाई करने वाली 'कारनरी आर्ट्रीज' या हृदय-धमनी होती है। इनकी संख्या दो होती है। जैसे ही बाएं निलय से महाधमनी (एओरेटा) निकलती है, तुरन्त ही वहां से ये दो 'कारनरी आर्ट्रीज' निकलतीं हैं जो बिल्कुल शुद्ध और ताजा रक्त मुझे सप्लाई करती हैं अर्थात् मुझे तनखा देती हैं। इन दो धमनियों में से एक मेरे बाएं भाग को रक्त पहुंचाती है और दूसरी दाहिने भाग को।

अभी जो मैंने कारनरी आर्ट्री की चर्चा की है, इनका नाम आप विशेष रूप से ध्यान में रखें क्योंकि मेरे (दिल के) अधिकांश रोग इनमें विकार उत्पन्न हो जाने के कारण ही होते हैं।

कहीं आप मेरी इस कहानी से ऊब तो नहीं रहे ? अगर ऊब कर आप मेरी दास्तान बीच में छोड़ देंगे तो मेरी धड़कनों के बारे में जान नहीं सकोगे।

धड़कनें

मेरी धड़कनों का रहस्य और कुछ नहीं है; मैं जो अपने कमरों से खून को पम्प करता हूं, उसी से धड़कन पैदा होती है। बारीकी से देखिए तो धड़कन के तीन भाग होते हैं। पहले में कमरे की दीवारें (पेशियां) सिकुड़कर खून को धकेलती

हैं अर्थात् उस पर दबाव डालती हैं। फिर ढीली पड़ जाती हैं; फिर रुकती हैं अर्थात् आराम लेती हैं। लेकिन यह आराम लेने का समय, सिकुड़ने और ढीली पड़ने के मिले-जुले समय से कहीं कम होता है। अब आप इससे ही अनुमान लगा लीजिए कि दीवारों को सिकोड़ने का काम मैं आधे सैकण्ड से कम समय में ही पूरा कर देता हूं, तो समझिए कि आराम के लिए मुझे कितना समय मिलता होगा।

मैं इस स्थल पर यह बात गर्व के साथ कहूंगा कि मैं आपका वह वफादार सेवक हूं जो आराम नहीं सिर्फ काम करना जानता है।

माता के गर्भ में चौथे महीने से जो मैं धड़कना शुरू करता हूं तो सारी उम्र धड़कता रहता हूं। इतना वफादार शायद आपके शरीर में कोई दूसरा अंग नहीं है। लेकिन ठहरिए, मैं एक बड़ा बोल कह गया। वास्तव में फेफड़े भी तो हैं जो मेरे समान ही आजीवन आपकी सेवा में रत रहते हैं—आपके वक्ष में दाएं और बाएं फेफड़े जो प्रतिक्षण श्वास-प्रश्वास द्वारा मेरे भेजे हुए खून को शुद्ध करते रहते हैं। परन्तु फेफड़े अपना काम मुझसे लगभग साढ़े पांच महीने के बाद शुरू करते हैं, अर्थात् बच्चा श्वास-प्रश्वास तभी लेता है जब माता के गर्भ से बाहर आ जाता है, जन्म ले लेता है; जबकि मेरा काम गर्भ-काल से ही प्रारम्भ हो जाता है।

प्रकृति, जो धड़कनों के माध्यम से मेरा काम सम्पादित कराती है, उसके पीछे एक खासा राज छिपा है। पानी या किसी भी तरल पदार्थ का स्वभाव नीचे की ओर बहना होता है। लेकिन मुझे खून की सप्लाई अपने से ऊंचे स्थानों (जैसे गला, गर्दन, सिर, कन्धे आदि) तक भी करनी पड़ती है। तो धड़कनों के माध्यम से रक्त ठेला जाकर ही इन स्थानों तक पहुंच पाता है।

मेरी धड़कनें एक स्वस्थ वयस्क पुरुष में ७०-७२ बार प्रति मिनट के हिसाब से होती हैं। लेकिन महिलाओं में धड़कनों की गति प्रति मिनट ८ से १० तक बढ़ी हुई रहती है।

बचपन की अवस्था में मेरी धड़कनें काफी ज्यादा रहती हैं अर्थात् एक बच्चे का दिल प्रति मिनट लगभग १२८ से १३० बार धड़कता है। लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है, धड़कनें कम होती जाती हैं। व्यायाम, भोजन के बाद, गर्मी में, घब-

राहट में, तनाव की दशा में तथा दूसरी अच्छी-बुरी भावनाओं के मातहत मेरी धड़कनें घटती-बढ़ती रहती हैं, और यह प्रक्रिया स्वाभाविक होती है।

मैं बोलता भी हूं, अर्थात् मेरे भीतर से आवाज भी निकलती है। यदि आप डॉक्टर का स्टेथेस्कोप कानों में लगाकर सुनें तो आपको लब्-डब् लब्-डब् की आवाज सुनाई देगी; यूं यह आवाज कपाटों के खुलने और बन्द होने के कारण होती है, परन्तु यह मेरी अपनी भाषा भी है जिसके माध्यम से मैं अपने दुःख-सुख की बात डॉक्टर से कह देता हूं और वह उसका उपाय करता है।

नाड़ी

मेरी धड़कनें शरीर की धमनियों (शुद्ध रक्त लाने वाली नलिकाओं) में लहरें पैदा करती रहती हैं। जहां-जहां धमनियां त्वचा के नजदीक आ गई हैं और उनके नीचे हड्डी पड़ गई है, वहां से लहरें बहुत साफ अनुभव होती हैं; जैसे कलाई में अंगूठे के नीचे नाड़ी। ये नाड़ियां, मस्तक के इधर-उधर तथा पैरों के टखनों के नीचे भी अनुभव की जा सकती हैं। मगर जितनी स्पष्ट लहरें कलाई की नाड़ी में अनुभव होती हैं, उतनी दूसरे स्थानों पर नहीं होतीं।

नाड़ी में आने वाली ये लहरें भी धड़कनों के अनुरूप होती हैं; अर्थात् नाड़ी की चाल भी गिनती में मेरी धड़कनों के बराबर ही होती है, जैसे वयस्क पुरुष में ७०-७२ बार प्रति मिनट।

नाड़ी की ये लहरें भी एक प्रकार से मेरी भाषा होती है। मैं अपनी हालत का इजहार इनके मध्यम से करता रहता हूं। मेरी भाषा को चिकित्सक अच्छी तरह समझते हैं। पहले जमाने के चिकित्सकों को इतना अच्छा नाड़ी-ज्ञान होता था कि वे नाड़ी देखकर ही शरीर के सारे रोगों का पता चला लेते थे।

रक्तचाप (ब्लडप्रेशर)

जब मैं खून को धमनियों में धकेलता हूं तो खून धमनियों की दीवारों पर एक

दबाव डालता है। यह दबाव ही रक्तचाप या ब्लडप्रेशर कहलाता है। इस रक्तचाप की पैमायश होती है अर्थात् यह मापा जाता है। इस माप के दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष के अंक नीचाई में होते हैं और दूसरे पक्ष के ऊंचाई में।

ऊंचाई वाले अंक **सिस्टोलिक दबाव (प्रेशर)** के होते हैं अर्थात् वह दवाव जो मेरी (दिल की) पेशियों के सिकुड़ने के समय पड़ता है। नीचाई वाले अंक **डायस्टोलिक दबाव (प्रेशर)** के होते हैं जो मेरी (दिल की) पेशियों के ढीले होने के समय पड़ता है। ये दोनों दवाव एक खास डिग्री तक स्वाभाविक माने गए हैं।

एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति का सिस्टोलिक प्रेशर ९५ से १४५ मिलीमीटर तक और डायस्टोलिक प्रेशर ६० से ९० मिलीमीटर तक स्वाभाविक माना गया है। (इस ब्लडप्रेशर को नापने का एक खास यन्त्र होता है जिसे आमतौर पर ब्लडप्रेशर इन्स्ट्रूमैंट कह दिया जाता है इस यन्त्र के पारे के चढ़ाव-उतार से माप देखा जाता है।) किसी व्यक्ति के ब्लडप्रेशर का माप इस तरह लिखा जाता है—१४५/९० मिलीमीटर।

कुछ ऐसी परिस्थितियां भी आती हैं जिनमें ब्लडप्रेशर बढ़ जाता है जैसे—व्यायाम, उत्तेजना, सिगरेट पीना, क्रोध, भोजन करना आदि। लेकिन यह वृद्धि अस्थायी होती है। अलबत्ता नींद में ब्लडप्रेशर गिर जाता है। यह उतार-चढ़ाव स्वाभाविक होता है। लेकिन जब दबाव (प्रेशर) लगातार ऊंचा बना रहता है तो वह रोग की अवस्था होती है जिसे ऊंचा रक्तचाप, हाई ब्लडप्रेशर या हायपरटैन्शन कहते हैं।

कुछ अद्भुत विशेषताएं

अपनी कुछ दूसरी विशेषताएं बताकर मैं अपनी कहानी समाप्त कर रहा हूं। ये विशेषताएं बताना मैं इसलिए जरूरी समझता हूं कि आप मेरी शक्ति का अनुमान सही तौर पर लगा सकें।

किसी शायर ने मेरे बारे में एक शेर कहा है—

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का
जो चीरा तो इक कतरए-खूं न निकला"

(पृष्ठ ६३ का शेष)

खेद है कि यह शायर साहब मेरे बारे में बड़ा गलत अन्दाजा लगा बैठे। उन्हें मेरे अन्दर एक कतरा (बूंद) खून भी न मिला जबकि वास्तव में हर वक्त मेरे कमरों में लगभग दो प्याले खून मौजूद रहता है।

—मैं प्रतिदिन ३००० गैलन से ज्यादा खून पम्प कर डालता हूं।

—मैं आपके पूरे जीवन में जितनी शक्ति खर्च करता हूं उस ताकत से दस टन वजन को आकाश में दस मील तक ऊपर उठा सकता हूं।

—एक घंटे में मेरी जितनी शक्ति खर्च होती है उतनी ताकत से मैं एक व्यक्ति को लिफ्ट द्वारा पांच मंजिल तक पहुंचा सकता हूं।

—अगर किसी लॉरी में दो दिल लगा दिए जाएं तो वह दो साल में पूरी दुनिया का चक्कर लगा सकती है।

प्रकाशितमन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित स्लोगन

१. क्रोध को शांति से जीतो। मान को नम्रता से जीतो। माया को सरलता से जीतो। लोभ को संतोष से जीतो। —भगवान महावीर

२. सब मनुष्यों को चाहिए कि वे जिस प्रकार अपने लिए उत्तम पदार्थ चाहते हैं, उसी प्रकार अन्य जनों के लिए भी इच्छा करें। —ऋग्वेद

३. ताकतवर वह नहीं जो दूसरों को पछाड़ दे; बल्कि ताकतवर वह है जो गुस्से के वक्त अपने पर काबू रखे। —मुहम्मद साहब

४. बीमारों को चंगा करो। कोढ़ियों की सफाई करो। मुर्दों को उठाओ। दुष्टों को निकालो। खुले हाथ से तुम्हें मिला है, खुले हाथ से दो। —यीशु का वचन

५. दुःख इच्छा से आता है, भय इच्छा से आता है, जो इच्छाओं से मुक्त है, वह न दुःख जानता है न भय। —बुद्ध

६. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए, सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए। —महर्षि दयानन्द

Regd. No—D (DN) 298 Jan, 1984
RN. No 25666/74 (Registrar of News Papers India)

प्रकाशित मन

इस भ्रम का निवारण करता है कि आध्यात्मिकता का पालन घर-संसार से नाता तोड़कर ही किया जा सकता है। प्रकाशित मन की मान्यता है कि वास्तविक आध्यात्मिकता आनंदपूर्वक जीने तथा औरों को जीने देने के लिए प्रेरित करती है।

लंबे काल की राजनैतिक दासता से हमारे जन-मानस में उपजी मानसिक गुलामी के कारण हममें अपनी प्राचीन विद्याओं के प्रति जो अविश्वास का भाव आया है

तथा

अपने देश के प्रबुद्ध वर्ग में अपनी बौद्धिक क्षमता के प्रति जो हीनता की भावना उपजी है, उसे दूर करना तथा देशवासियों में अपने प्रबुद्ध वर्ग के प्रति आदर का भाव उदित करना भी प्रकाशित मन का अभीष्ट है।

किसी भी परम्परा को बिना सोचे अंधविश्वास कहकर उसे नकारने की अपेक्षा उसके उपयोग के विषय में चिन्तन करके कोई निष्कर्ष प्रस्तुत करना भी प्रकाशित मन की नीति का अंग है।

प्रकाशित मन ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक सतीशचन्द्र छाबड़ा द्वारा गांय. प्रिंटर्स, ५१३/१ भोलानाथ नगर, दिल्ली-३२ तथा कवर अमर प्रिंटिंग प्रेस कूचा पंडित [illegible] कुआं दिल्ली में मुद्रित होकर प्रकाशितमन कार्यालय, दरीबा कलां दिल्ली से प्रकाशित।